गोरक्षग्रन्थमालायाः प्रथमं पुष्पम्

गोरक्षस्तुतिमञ्जरी

स्फूर्तये विश्वशिल्पस्य, श्रीशिवानन्दमूर्तये ।
विश्वोन्मेषनिमेषायै, निस्तुषायै नम स्त्विषे ॥

गोरक्षः

१४
१५५८

नहरेवी काठमाण्डौ
नेपाल

सुनील कुमार आचार्य

दर्शः डा. १६

卐

२८२

गोरक्षग्रन्थमालायाः प्रथमं पुष्पम्

गोरक्षस्तुतिमञ्जरी

मृगस्थली स्थली पुण्या, भालं नेपालमण्डले ।
यत्र गोरक्षनाथेन, मेघमालासनीकृता ॥

सुनील कुमार आचार्य
कक्षा 'नवम' - ए

वि० संवत् २००७,
हरद्वारकुम्भपर्वणि
वितरणार्थम्

प्रकाशकौ—
योगियुवकसंघस्थौ
अवेद्यनरहरिनाथौ

(पुनः प्रकाशनाधिकारः प्रकाशकाधीनः)

ॐ

।। गोरक्षप्रातःस्मरणम् ।।

प्रातःस्मरामि शशिकान्तशिलातलस्थं,
सिद्धासनं सकलसिद्धसमाजजुष्टम् ।
उद्यद्दिनेशकिरणारुण जाटजूटं,
गोरक्षमक्षयमखण्डमवेद्यमाद्यम् ।।

(१)

प्रातर्भजामि भुजगेश्वरयज्ञसूत्रं,
तापत्रयत्रिविधपापहरं त्रिनेत्रम् ।
सिद्धासुरोरगनरामरवन्द्यपादं,
गोरक्षमक्षरमनादिमनन्तमीड्यम् ।।

(२)

प्रात र्नमामि निगमागमगम्यमेकं,
भूभूपभूसुरहिताय कृतावतारम् ।
शान्तं शशाङ्कदलकोमलकान्तकायं,
मायापतिं पतितपावनमप्रमेयम् ।।

(३)

(शिवम्)

नेपाल-मृगस्थली-पद्मपाणि
लोकेश्वर-मत्स्येन्द्र नाथः

शिव गोरक्षः
"नेपाल · मृगस्थली,

पीठिका

पाठकवर्ग !

यह गोरक्षस्तुतिमञ्जरी गोरक्षग्रन्थमाला का प्रथम पुष्प है। इसमें भगवान् गोरक्षनाथ की कुछ स्तुतियों का संग्रह किया गया है। संग्रहकर्ता गोरक्षराज्य नेपाल मृगस्थली गोरक्षपीठ के नरहरिनाथ हैं। श्रीनाथ के असंख्य ग्रन्थ नेपाल राजस्थान दक्षिण काङ्गडा आदि प्रायः सभी स्थानों में अप्रकाशित रूप में विद्यमान हैं। भारत के अतिरिक्त विदेश में भी अपरिमित मात्रा में हैं। हमने सुना है—फ्रांस और जर्मन में 'गोरक्ष-पुस्तकालय' है। जहाँ पर केवल गोरक्षसम्बन्धि ग्रन्थों का संग्रह है। ये ग्रन्थ योग तथा तन्त्र विषयक अधिक हैं एवं प्रायः सभी विषयों में हैं। इनमें से अत्यल्प प्रकाश में आये हैं, और सब जीर्ण शीर्ण लुप्त गुप्त नष्ट भ्रष्ट अवस्था में हैं। इन्हीं सबका क्रमशः प्रकाश करने के लिए 'गोरक्षग्रन्थमाला' की आयोजना की गई है। अखिल भारतीय योगि-महासभा को नियमानुसार कार्य करने में योगियुवकसंघ अधिक सहयोग दे रहा है और योगिमात्र से सहयोग ले रहा है। योगिनरहरिनाथ के ३-४ वर्ष के परिशीलन से राजस्थान एवं नेपाल में प्रायः १५०० डेढ़ हजार ग्रन्थों का परिचय प्राप्त हुआ है और कुछ उपलब्ध भी हुए हैं। ये ग्रन्थ सभी वर्ग के लोगों के लिए अत्युपयोगी हैं और दिव्य हैं। इन्हीं के संग्रह के लिए शास्त्रार्थ महारथी योगी शङ्करनाथजी देवीपाटन की महन्ती त्याग कर एक वर्ष से नेपाल में बैठे हैं और सभापति महन्त दिग्विजयनाथ जी गोरक्षग्रन्थमाला की आयोजना कर रहे हैं। इस महान् कार्य में उदार-चेता नेपाल नरेश सब प्रकार सहयोग दे रहे हैं।

चीन के लामा लोगों के संसर्ग से विदित हुआ है कि—'चीन और तिब्बत में प्रधान उपास्यदेव तीन हैं। गोरक्षनाथ मत्स्येन्द्रनाथ और बुद्ध। गोरक्षनाथ को 'गुरुरेंपोर्छे-पेंरें पोर्छे-वज्रसिद्धि-वज्रगुरु' आदि नामों से, मत्स्येन्द्रनाथ को 'देप्रच्यङ् चुकचिकस्यल्-रत्नाभट्टा चुकचिकस्यल्-छैटोसाटो चुकचिकस्यल् - सुखावतीलोकेश्वर-आर्यावलोकितेश्वर - लोकनाथ' आदि नामों से और बुद्ध को 'बोधिसत्व-शाक्यसिंह' आदि नामों से पुकारते हैं। वज्रगुरु का वज्रयान योगपद्धति। मत्स्येन्द्र का महायान कर्मपद्धति। बुद्ध का हीनयान उपासनापद्धति। इन मुख्य तीन यानों में लाखों ग्रन्थ प्रायः संस्कृत में हैं। वज्रयान के नियम अति कठोर हैं जो निवृत्तिपरक योगमार्ग है। जिसके प्रभाव से लामा (योगिगुरु) चिरायु और त्रिकालदर्शी सिद्ध होते हैं। तीनों यानों का परस्पर सामञ्जस्य है। ब्रह्मा को चुकचिकस्यल्-विष्णु को बोधिसत्व और शिव को वज्रगुरु कहते हैं'। वस्तुतः संसार में नामभेद है, वस्तुभेद नहीं। शीघ्रतावश कुछ स्तोत्रों का अनुवाद छूट गया है।

प्रिय पाठको! यह मञ्जरी कर्णपूर के रूप में उपहार करते हैं और निवेदन करते हैं कि शीघ्र ही गोरक्षग्रन्थमाला आप लोगों के गले में आ रही है।

निवेदक—

योगियुवकसंघस्थ

अवेद्यनाथ योगी,

गोरक्षनाथ,

गोरखपुर।

३२८७
जी० ६५

ॐ

गोरक्षकल्पद्रुमः

पातालं फणिनां पतिः सुरपुरं, वाचस्पतिः शारदा,
याता ब्रह्मपुरं तत्र स्तवविधौ, गोरक्ष ! भग्नोद्यमाः।
अस्माकन्तु कथैव का ? गुरुजन,प्रीत्यै शिशूनां गिरो,
मत्वैतन्मनसो मुदे कथमपि, व्यापारयामो गिरम् ॥१॥

कल्पच्छाया

धर्मार्थकामयुतमोक्षफलाभिलाषो,
यद्यस्ति कीर्तिकवितासु कुतूहलश्च ?।
गोरक्षनाथचरणस्तवकल्पवृक्ष,-
च्छायां भजन्तु सुधियो भुवि सोमबद्धाम् ॥१॥

हे अनन्तशक्ते ! हे अयोनिशङ्कर !! हे गोरक्ष !!! आप की असीम महिमा का अशेष आकलन करने के लिए सहस्रानन शेष, सुरगुरु बृहस्पति और वाग्देवता शारदा ; इन तीनों ने मिल कर यथाशक्ति प्रयत्न किया। किन्तु पार न पा सके; अपने उद्योग को असफल देख कर लज्जा से शेषनाग ने पृथ्वी के नीचे जाकर गुप्तवास करना प्रारम्भ किया, बृहस्पति ने अमरावती का मार्ग ग्रहण किया तथा सरस्वती ने अपनी वीणा उठा कर सत्यलोक की ओर प्रयाण किया। जब इन लोगों की यह दशा है

तो हम जैसे मन्दमति मनुष्यों की क्या शक्ति है जो आप के गुणों की गणना करें ? किन्तु बालकों की तोतली बोली से माता पिता गुरुजन प्रसन्न होते हैं। अतः इस पदविन्यास में अकुशल बालवाणी को आप की सेवा में किसी प्रकार आश्वासन देकर प्रवृत्त कर रहे हैं। हे प्रभो ! धृष्टता पर क्षमा करना।

भावा भावुकतां रसा रसिकतां, साऽलङ्क्रियाऽलङ्क्रियां,
रीतिः प्रीतिपदं गुणा गुणिपदं, वर्णास्तु कर्णाऽमृतम् ।
अर्थाः सार्थकतां व्रजन्तु निखिला, वाङ्माधुरीं वाङ्मयं,
वाणि ! त्वं प्रगुणा भवाद्य भगवान्, गोरक्षको गीयते ।२।

स्थायी भावादि समस्त भाव भावुक बनें, शान्तादि समग्र रस रसिक बनें, शब्द और अर्थों की अलङ्क्रियायें अलङ्कृत हो जायें, वैदर्भी आदि सम्पूर्ण रीतियाँ प्रसन्न हों, माधुर्यादि सकल गुण गुणी हों, अकार ककारादि निखिल वर्ण कर्णामृत बनें, अभिधादि वृत्तियों से बोध्य सर्वार्थ सार्थक हों, विशाल वाङ्मय वाङ्माधुरी का अनुभव करे और हे वाणि ! तुम भी सम्पूर्ण साधनों को साथ लेकर प्रस्तुत हो जाओ, क्योंकि आज भगवान् गोरक्ष नाथ का गुणानुवाद करना है।

आनन्दाम्बुनिधेः स्वधामविरते, मायाविहीनस्य ते,
वारं वारमिलातलावतरणे, गोरक्ष ! किं तैः श्रमैः ? ।
मन्येऽसंख्यमहीपती न्निजदृशा, नीत्वा विदेहात्मतां,
ब्रह्म न्नेकविदेहदीनधरणी, प्रल्हादने ते श्रमाः ! ॥ ३ ॥

हे ब्रह्मन् ! हे गोरक्ष !! आप तो सच्चिदानन्द सागर हैं, अपने ज्योतिर्मय परमधाम में ही नित्य रमण करने वाले मायातीत निरञ्जन हैं; आप को वारंवार नट की भाँति नाना स्वरूप से भूमण्डल में अवतार लेने की क्या आवश्यकता ? और इतना परिश्रम क्यों ? हमें तो प्रतीत होता

है—असंख्य महीपतियों को अपनी कृपा दृष्टि से विदेह कर एक विदेह से खिन्न पृथ्वी का आह्लादन करने के लिए आप का प्रयास है। अर्थात् 'इतने विशाल मेरे अङ्क में विदेहमुक्त मेरा सुपुत्र एक जनक मात्र हुआ, इस प्रकार दीन हुई पृथ्वी को प्रसन्न करने के लिए आपने भर्तृ आदि अनन्त नरपतियों को विदेहमुक्त कर दिया।

मोहं मार्जयितुं नगेन्द्रदुहितु, र्हर्तुं क्षमासङ्कटं,
धर्तुं योगधुरां परां प्रथयितुं, विद्यां वृषं रक्षितुम्।
कर्तुं लोकमशोकमुन्नमयितुं, मत्स्येन्द्रकीर्तिं भवान्,
प्राप्तो गामगजां वियोज्य नटराड्, गोरक्षनाथात्मना ॥४

हे नाथ ! हे नटराज !! नगेन्द्रनन्दिनी पार्वती को इस बात का गर्व था कि 'प्रमथनाथ महेश्वर हमारे वश में हैं और हमने इन्हें व्याप्त कर रखा है। हम से बाहर नहीं हैं'। शैलजा के इस मोह को दूर करने के लिए, पृथ्वी के सम्पूर्ण सङ्कटों को नष्ट करने के लिए, दुर्वह योगधुरा का धारण करने के लिए, आत्मीय अक्षर ब्रह्मस्वरूप की प्रकाशिका परा विद्या का प्रचार करने के लिए, अभ्युदय और निश्रेयस सिद्धि के मूल साधन वृषरूप धर्म की रक्षा करने के लिए, समस्त लोकों को शोकरहित करने के लिए, धर्मपुत्र और शिष्य मत्स्येन्द्रनाथ की कीर्ति को रूपान्तर से शिष्य बन कर विख्यात करने के लिए, हिमाद्रिकन्या को वियुक्त कर हे शिव ! आपने गोरक्षनाथ के रूप से मर्त्यलोक में पदार्पण किया है।

नेदु र्मेदुरमम्बरे जलधरा, उर्व्यां मयूराः समं,
गम्भीरं हरयो गिरौ सुरपुरे, भेरीमृदङ्गादयः।
इत्थं शुश्रुविरे गिरोऽम्बरगता, गोरक्षनाथोदये,
"योगाचार्यवपुर्धरः स्मरहरो, गामागतो नन्दत ॥ ५ ॥

गावः सन्तु पयोधरा गतरुजो, नद्यः प्रसन्नाम्भसो,
हिंसाशून्यधियश्चरन्तु हरिणैः, साकं सदा श्वापदाः ।
आचारं परिपालयन्तु मनुजा, निर्व्याजमात्मोचितं,
विघ्ना यान्तु लयं करोतु कुशलं, गोरक्षनाथः शिवः ॥६॥
पर्जन्याः समये सृजन्तु सलिलं, राजा प्रजा रक्षतु,
शस्यैः श्यामलकोमलास्तु विपुला, लक्ष्मीर्लसत्वालये ।
वाता वान्तु सुखाः सुखं हिमकरो, देयात्प्रभां भास्करः,
सर्वे सन्तु जनाः श्रुतिस्मृतिधना, धर्मोऽधिकं वर्धताम् ।"७

हे नाथ ! हे शिव !! गोरक्ष के रूप से आपके उदय होनें पर एक साथ गगनमण्डल में काली काली घन घटायें मन्द मन्द गर्जना करने लगीं, भूमण्डल में मयूर मधुर केका करने लगे, गिरिकन्दरों में केशरी गम्भीर नाद करने लगे, सुरपुरी में भेरी मृदङ्गादिवाद्यविशेषों की आमन्द्र ध्वनि होनें लगी और इस प्रकार आकाशवाणी ने स्वस्तिवाचन किया— 'हे प्राणियो ! आनन्दोत्सव मनाओ। स्मरहर भगवान् हर योगाचार्य बन कर पृथ्वीतल में अवतीर्ण हो रहे हैं। आधि व्याधि रहित धेनु प्रशस्त दुग्धवाली हों, नदियाँ निर्मल जलवाली हों, हिंसावृत्ति को त्याग कर सिंहव्याघ्रादिहिंस्रजन्तु शान्तभाव से हरिणों के साथ सदैव विचरण करें, मनुष्य निष्कपट होकर आत्मोचित सदाचार का सदा पालन करें, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक आदि समस्त विघ्न बाधायें नष्ट हों, भगवान् शिवगोरक्ष सबका कल्याण करें। पर्जन्य अपने समय पर वृष्टि करें, राजा धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करे, पृथ्वी शस्यश्यामला हो, घर में लक्ष्मी निवास करे, सुखदायक वायु वहें, चन्द्रमा सुधामय किरणों से सबको आल्हादित करे, भास्कर अपना पुण्य तेज प्रदान करे, सभी लोग श्रुतिस्मृतियों को अपना परम धन समझें और धर्म की अधिक वृद्धि हो।'

अर्थात् — सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत् ॥

गोरक्ष ! त्वयि सङ्गते पुलकिता, पृथ्वी सनाथा यथा,
चन्द्रे कैरविणी चकोरललना, श्रीचन्द्रकान्ता शिला ।
मेघे जातिकदम्बयष्टिशिखिनी, चाताङ्गनाशुक्तयः,
सम्प्राप्ते दयिते यथा कमलिनी, रामे यथा कोशला ॥८॥

जैसे चन्द्रमा के पादस्पर्श से कुमुदिनी, चक्रवाकी और चन्द्रकान्त शिला पुलकित होती हैं, आषाढ के नील मेघ की मन्द गम्भीर ध्वनि को सुनकर जैसे जाती और कदम्ब की कुसुमकलिका पुलकित हो उठती है, मयूरी आनन्दोन्मत्त होकर नाच उठती है, चातकाङ्गना चञ्चुपुट खोल कर आकाश में उड़ने लगती है तथा शुक्तियाँ समुद्रतल से ऊपर आकर विवृत्त हो जाती हैं, जैसे दिवाकर के करस्पर्श से पद्मिनी विकसित होती है और लङ्काविजयी मर्यादापुरुषोत्तम रामभद्र को प्राप्त कर जैसे कोशलापुरी पुलकित हुई, ऐसे ही आपको प्राप्त कर हे नाथ ! सनाथा पृथ्वी पुलकित हुई ।

ऋद्धिं जानपदाः शमं मुनिवनं, निर्वैरतां जन्तवो,
विद्वांसो विनयं नयं नृपतयः, सिद्धिं गताः साधकाः ।
भूतिं भूवलयं लयं खलसभा, भीतिं भियैवेतयो,
गोरक्ष ! त्वयि गां गते तनुभृतां, किन्नाभवन् मङ्गलम् ॥९॥

हे गोरक्ष ! आपके आगमन से भूतल में प्राणियों का कौनसा मङ्गल नहीं हुआ ? सम्पूर्ण जनपदवासी समृद्ध हो गये, समस्त जन्तु निर्वैर हो गये, तपोवन प्रशान्त हो गये, विद्वान् लोग विनीत हो गये, राजा लोग न्यायी हो गये, साधक लोग सिद्ध हो गये, भूमण्डल ऐश्वर्य

सम्पन्न हो गया, खल सभा का प्रलय हो गया, ईतिभीतियाँ भयभीत होकर भाग गईं और सब प्राणी अकुतोभय हो गये।

गोपीचन्द्रमुखाः सभर्तृहरयो, भूपा भवाम्भोनिधे-,
भूपानां तनया दयामयतया, कूपा त्वयैवोद्धृताः।
योगो रोगजुषामरोगविधये, दिव्यौषधं बोधितो,
देव ! त्वद्वचसा नृभिः परिहृता, भोगा वियोगानुगाः।१०।

हे देव ! हे दयामय !! आपने इस भीषण भवसागर से गोपीचन्द्र-भर्तृहरि आदि अनन्त नरपतियों को पार कर दिया, हे करुणाकर ! संसार के अन्धकूप से चौरङ्गीनाथ पूर्ण आदि राजकुमारों का उद्धार कर दिया, जन्म-मृत्यु के क्षयरोग से पीडित प्राणियों को निरोग करने के लिए अष्टांगयोग की दिव्यौषधी का दिव्य बोध आपही ने करवाया और आपके वचनामृत से तृप्त हुए असंख्य मनुष्यों ने वियोगानुगामी परिणामताप-कारी सांसारिक भोगों को त्याग दिया।

योगं योगिजनो धनञ्च धनदः, स्वर्गद्रुमो दानितां,
सन्तः सत्त्वगुणं बलं बलरिपुः, प्रौढप्रतापं रविः।
दिव्या दिव्यदृशं कविश्च कवितां, रम्यां सुधा माधुरीं,
शौचं हव्यवहो गतोऽखिलगुरो, गोरक्षतो रक्षतः॥११॥

हे त्रैलोक्य रक्षक ! हे गोरक्षनाथ !! आपकी विभूति से कौनसा विभूषित नहीं हुआ ? योगिजनों ने योगसिद्धि, धनद कुबेर ने अष्टसिद्धि नवनिधि, कल्पतरु ने दानिता, सज्जनों ने सात्त्विकवृत्ति, बलरिपु इन्द्र ने बल, मार्तण्ड ने प्रचण्ड प्रताप, दिव्यजनों ने दिव्यदृष्टि, शुक्र वाल्मीकि आदि कवियों ने रमणीय कविता, सुधा ने माधुरी और हव्यवाही अग्नि ने शुचिता त्रिभुवन गुरु पतितपावन आपसे प्राप्त किया।

गोरक्ष! क्षमया क्ष्मा धृतिगुणः, शैलैः कला इन्दुना,
वात्सल्यं जननीजनै र्गुरुणा, बुद्धि र्विधात्रा विधिः ।
विद्या शारदया दया च हरिणा, गम्भीरता सागरैः,
पर्जन्यैः समता द्रुमैः सफलता, त्वत्तः समभ्यस्यते ।१२।

हे गोरक्ष ! पृथ्वी ने क्षमा, सुमेरु प्रभृति पर्वतों ने धैर्य, चन्द्रमा ने कला, जननियों ने वात्सल्य, बृहस्पति ने बुद्धि, विधाता ने जगद्रचना विधि, शारदा ने विद्या, हरि ने दया, सागरों ने गम्भीरता, पर्जन्यों ने पक्षपातरहित समता और वृक्षों ने सफलता आपसे प्राप्त किया है एवं कल्प कल्प में प्राप्त करते हैं ।

चातुर्यं चतुरानने विजयिता, जिष्णौ स्मरे चारुता,
बुद्धे भूतदया जले शिशिरता, रामे प्रजाऽऽह्लादिता ।
कृष्णे नीतिकला पराशरसुते, पाण्डित्यमब्धौ सुधा,
योगित्वं जनके शुके च पटुता, गोरक्षभा भासते ।१३।

चतुरानन ब्रह्मा में सृष्टिरचना चातुरी, इन्द्र-उपेन्द्र तथा अर्जुन में विजयिता, कामदेव में कमनीयता, बुद्ध में करुणा, जल में शीतलता, राम में प्रजारञ्जकता, कृष्ण में अद्भुत नीति, पराशरपुत्र वेदव्यास में पाण्डित्य, सिन्धु में सुधा, विदेहराज जनक में योगित्व और शुकदेव में वाक्पटुता एवं अन्यत्र जो जो चमत्कार युक्त प्रतिभा दृष्टिगोचर होती है हे गोरक्ष ! वह सब आपकी भासा है ।

सांख्येऽसौ कपिलः कलासु भरतो, योगे वशिष्ठादयः,
शेषो व्याकरणे पुराणनिचये, व्यासः क्रतौ जैमिनिः ।
अक्षोद्यासु कथासु याज्ञ उशना, नीतौ नये गौतमो,
वाल्मीकिः कवितावितानरचने, गोरक्षभासा क्षमः ।१४।

हे नाथ ! सांख्यशास्त्र में महर्षि कपिल, योगशास्त्र में महर्षि वशिष्ठादि, नाट्यवाद्यादि चतुष्षष्टि कलाओं में भरतमुनि, शब्दशास्त्र में शेषनाग पतञ्जलि, अष्टादश पुराण भागवत भारतादि की रचना में कृष्ण द्वैपायन, यज्ञशास्त्र मीमांसा में महामुनि जैमिनि, ब्रह्मप्रतिपादक कथाओं में योगि याज्ञवल्क्य, नीतिशास्त्र में दैत्यगुरु शुक्राचार्य, न्यायशास्त्र में अक्षपाद गौतम तथा कविता का वितान रचने में आदि कवि वाल्मीकि आपकी भासा और अनुकम्पा से कृतकार्य हुए ।

शब्दस्त्वं गगने जले मधुरता, स्पर्शोऽनिले तेजसि,
रूपं गन्ध इलातले शिशिरता श्रीखण्डपङ्केरुहोः ।
ज्योत्स्ना शीतकरे प्रभा दिनकरे, भूतेषु या चेतना,
यद्यत्सारमसारभाजि भुवने, गोरक्ष ! तत्तद्भवान् ॥१५॥

हे विभो ! हे गोरक्ष !! आकाश में आप शब्द हैं, जल में माधुर्य्य हैं, वायु में स्पर्श हैं, तेज में रूप हैं, पृथ्वी में गन्ध हैं, श्रीखण्ड-कमल-कर्पूरादियों मे शिशिरता हैं, चन्द्र में चन्द्रिका हैं, भानु में प्रभा हैं और प्राणियों में जो चेतना है; वह आपकी ही सत्ता है। अधिक कहाँ तक कहें ? इस असार संसार में जो जो सारभूत है, वह सब आपही हैं ।

आकाशोऽप्यवकाशदो दिनमणि, स्तेजस्विनामग्रणीः,
प्राणः प्राणिति यद्रसोऽपि रसवा, नामोदिनी मेदिनी ।
चित्तं चेतयते मनोऽपि मनुते, बुद्धि र्यतो बुध्यते,
यद्भासा भुवनं विभाति सकलं, गोरक्ष ! तुभ्यं नमः १६

जिससे आकाश भी अवकाश देता है, दिनमणि सूर्य तेजस्वियों में अग्रगण्य है, जगत्प्राण वायु जिसके आधार से जीता है, जिससे सभी रस सरस हैं, जिससे यह मेदिनी भी आमोदिनी है, चित्त में स्मरण-

शक्ति है, मन में मननशक्ति है, बुद्धि में बोधशक्ति है एवं समस्त भुवन जिसकी व्यापिनी भासा से विभासित है, हे गोरक्ष! ऐसे आपको नमस्कार है।

हेमन्तः शिशिरो वसन्त उरुमा, ग्रीष्मोऽथ वर्षाः शर-,
च्चैतेऽङ्गान्ययने तलोर्ध्ववपुषी, पक्षौ पुरः पृष्ठतः।
नेत्रोन्मीलनमीलनं तव विभोऽ, होरात्रमुज्जृम्भते,
सृष्टिस्थित्यवसानमस्य कुरुषे, गोरक्ष! कालात्मना॥१७॥

हे विभो! हे महाकाल!! हे गोरक्ष!!! हेमन्त-शिशिर-वसन्त ग्रीष्म-वर्षा और शरद्, ये छः ऋतु आपके आपाद मस्तक छः अङ्ग हैं। दक्षिणायन आपकी नाभि से नीचे का भाग है तथा उत्तरायण नाभि से ऊपर का भाग है। शुक्लपक्ष आपके शरीर का अग्र भाग है और कृष्णपक्ष पृष्ठ भाग है। आपके नेत्रों का उन्मेष दिन है और निमेष रात्रि है। एवं प्रकारेण आप कालात्मक होकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की सृष्टि-स्थिति तथा प्रलय करते रहते हैं।

सृष्टौ भासि चतुर्मुखेन वपुषा ऽ,धिष्ठाय रागं रजः,
स्थित्यां चारुचतुर्भुजो विजयसे, सत्त्वं श्रितो निर्मलम्।
संहारे तमसा हरो हरसि त, त्सर्वं नटस्युद्धतं,
त्वामाहुर्मुनयस्तथापि विगुणं, गोरक्ष! गोरक्षकाः॥१८॥

हे निरञ्जन! हे गोरक्ष!! रागी रजोगुण को लेकर सृष्टिकाल में आप हिरण्यगर्भ बनते हैं, स्थितिकाल में 'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्' सत्त्वगुण को लेकर चतुर्भुज जनार्दन बनते हैं, संहारकाल में तमोगुण को लेकर समस्त ब्रह्माण्ड का प्रलय करने के लिए रौद्र रूप धारण करते हैं और उद्धत नाट्य करते हैं। एवं प्रकार से तीनों गुणों

की भूमिका लेकर अद्भुत नाटक करते हुए भी आपको साङ्गोपाङ्ग सरहस्य श्रुतियों के रक्षक मुनिजन निर्गुण ही कहते हैं। आपका चरित्र विचित्र है और आपकी महिमा अपार है।

मेघा दुन्दुभयः पटः सुरधुनी, दण्डः सुमेरु र्ध्वजे,
पृथ्वी पुष्परथ स्तथार्कशशिनौ, चक्रे हया वायवः।
वेदा वन्दिजना गजाः शिखरिणो, लाजा इमा स्तारका,
नर्तक्यः ककुभः सुराः सहचरा, गोरक्षयात्राविधौ ॥१९॥

हे नाथ! आपकी यात्रा में पृथ्वी पुष्परथ है तथा शशि भास्कर दो चक्र हैं, ४९ वायु युग्य अश्व हैं, ध्वजदण्ड कनकाचल मेरु है और वैजयन्ती ध्वजपट मन्दाकिनी है, मेघ ही दुन्दुभि वाद्य हैं, साङ्गोपाङ्ग चारों वेद वन्दिजन हैं, श्यामल और विशाल शैल मदमत्त हस्ती हैं, शरदम्बर में विकीर्ण ये तारागण लाजाञ्जलि हैं, दशों दिशायें नर्तकियाँ हैं और समस्त सुरगण सहचर हैं।

स्रष्टा शौरिसुरासुरोरगनरा, नागालयाः सागराः,
शूरः शीतकरः समीरधरणी,धाराधरा भूधराः।
यावत् सृष्टिरियं चराचरवती, किञ्चलिपतैरलिपतै,-
र्गोरक्ष! त्वदपाङ्गभङ्गिरचितो, लीलाविलासोऽखिलः॥२०॥

विधि-वष्णु-सुर-असुर-नर-नाग-पातालादि नागलोक सप्तसागर-सूर्य-चन्द्र-वायु-धरित्री-मेघ-पर्वत आदि यावत् चराचर जगत् हे गोरक्ष! आपकी अपाङ्ग भङ्गि का लीला विलास है।

अर्घ्यं स्वर्गनदी विधुश्च कमलं, पाद्यञ्च सप्ताब्धयो,
बिल्वीकोमलपल्लवञ्च गगनं, ज्योतिर्गणा अक्षताः।

सूर्य श्चारु निराजनं तत्र सुधा, नैवेद्यमावेद्यते.

वातोऽयं व्यजनं गृहं त्रिभुवनं, गोरक्ष ! पूजाविधौ ॥२१॥

हे शिव ! हे गोरक्ष !! आप की पूजा में इस त्रिभुवन का सुन्दर मन्दिर है, स्वर्गनदी गङ्गा अर्घ्य है, सप्त समुद्र पाद्य हैं, पार्वण चन्द्रमा विकसित कमल है, नील गगन कोमल बिल्वदल है, ग्रहनक्षत्र अक्षता हैं, सुधा का नैवेद्य समर्पण किया जाता है, सहस्रांशु सूर्य निरन्तर आरती उतारता रहता है और यह सदागति मन्द सुगन्ध शीतल वायु ही व्यजन है। आप की यह दिव्य पूजा प्रकृति से सदैव होती रहती है।

पुष्पं भृङ्गकुलैः फलं शकुनिभि, र्मीनै र्जलं दूषितं,

दुर्वक्त्रै र्मुसलैश्च तण्डुलकणा, व्यालीकुलै श्चन्दनम् ।

धूपो धूमयुजा मृगै र्मृगमदो, वत्सैश्च दुग्धं गवां,

चित्तं नाथ ! तवार्पयाम्यपचिता,वन्यैरनालोकितम् ॥२२

हे नाथ ! हे गोरक्षदेव !! आप की पूजा में कौन सी वस्तु अर्पण करें ? मत्स्यादि जलजन्तुवों ने जल को, सर्पों ने चन्दन को, भ्रमरों ने पुष्पों को, पक्षियों ने फल को, दुर्मुख मुसलों ने तण्डुल कणों को, अग्नि ने धूपको, मृगों ने मृगमद कस्तूरी को और वत्सों ने गोदुग्ध को दूषित कर दिया है। एवं प्रायः सभी वस्तुयें दूषित हो चुकी हैं। हे प्रभो ! एक चित्त के अतिरिक्त मेरे पास कोई भी वस्तु अदूषित नहीं है। अतः इस चित्त को समर्पित करता हूँ जिसे किसी ने अद्यावधि देखा तक नहीं है।

यन्मृग्यं श्रुतिभिः स्मृतं स्मृतिगणै, र्ध्येयं पुराणादिभिः,

स्तुत्यं शारदया मतं मुनिजनै, र्दृश्यं सदा दर्शनैः ।

वन्द्यं देवकुलैः श्रितं सुकृतिभिः, सिद्धैः समाराधितं,

तद्गोरक्ष ! पदं त्वदीयमतुला,नन्दाय वन्दामहे ॥२३॥

श्रुतियाँ जिस का अन्वेषण करती हैं, स्मृतियाँ जिस का स्मरण करती हैं, पुराण-रामायण भारतादि शास्त्र जिस का ध्यान करते हैं, शारदा सदा जिस की स्तुति करती है, मुनिजन जिस का मनन करते हैं, दर्शन शास्त्र सदैव जिसका दर्शन करते हैं, सायं प्रातः देवकुल जिसकी वन्दना करता है, पुण्यात्मा लोग जिस का आश्रय लेते हैं ; हे गोरक्ष ! ऐसे आप के अनवद्य तथा अनुपम पद की हम शाश्वत आनन्द के लिए वन्दना करते हैं ।

वाच स्तोत्रविधौ करावपचितौ, चित्तं स्मृतौ चक्षुषी,
दृष्टौ पादयुगं प्रदक्षिणविधौ, जिह्वाऽभिधानामृते ।
श्रोत्रं ते श्रवणे मनोऽपि मनने, बुद्धि र्निदिध्यासने,
गोरक्ष ! प्रयतास्तु नः प्रतिपलं, त्रैलोक्यलक्ष्म्यापि किम् ?॥२४॥

हे विभो ! हे गोरक्ष !! हमारी वाणी निरन्तर अप्रमत्त होकर आप की स्तुति में, हस्तयुगल आप की सेवा पूजा में, चित्त आप की पावन स्मृति में, नेत्रयुग्म आप के दर्शन में, पादद्वय आपकी प्रदक्षिणा में, जिह्वा आप के नामामृत में, श्रोत्रयुगल आप के चरित्र श्रवण में, मन आप के मनन में और बुद्धि आप के निदिध्यासन में तत्पर हो । वस, हमें इतना ही चाहिए । त्रैलोक्यलक्ष्मी की कोई आवश्यकता नहीं ।

वेदाः खेदमिताः षडङ्गसहिता, याता स्मृति र्विस्मृतिं,
भाष्यं हास्यमगा त्पुराणमगुणं, रामायणं जीर्णताम् ।
भग्नं भारतमन्यतन्त्रसहितं, नो दृश्यते दर्शनं,
नग्ना नास्तिकता नटत्यनुग्रहं, गोरक्ष रक्षावनिम् ॥२५॥

अहो ! कैसा भीषण समय है ? षडङ्ग सहित वेद खिन्न हैं, समस्त स्मृतियाँ विस्मृत हो रही हैं, भाष्य हास्यास्पद हो गये, पुराण गुणरहित

माने जाते हैं, रामायण जीर्ण हो गये, दर्शनों के दर्शन ही दुर्लभ हो गये तथा अन्य सम्पूर्ण तन्त्रों के साथ महाभारत भी भग्न हो गया। घर घर में केवल नास्तिकता नग्न होकर नाच रही है। हे गोरक्ष ! इस पृथ्वी की रक्षा करो।

केयूरं कनका न्मृदोऽपि कलश, स्तन्तोः पटोऽन्नाद्वपु,-
बीजादङ्कुर ऊर्मिका जलनिधे, र्वन्हेः स्फुलिङ्गो यथा।
ज्योत्स्ना चन्द्रमसः प्रभा दिनमणेः, शक्तिः शरीरादिव,
गोरक्ष ! त्वदयं चराचरमयो, लोकः समुन्मीलति॥२६॥

हे गोरक्ष ! हे भव !! जैसे सुवर्ण से केयूर कुण्डल, मृत्तिका से कलश, सूत्र से वस्त्र, अन्न से शरीर, बीज से अङ्कुर, समुद्र से तरङ्ग, अग्नि से विस्फुलिङ्ग, चन्द्र से चन्द्रिका, सूर्य से प्रकाश और शरीर से शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसे ही यह समस्त चराचर प्राणियां के पुष्पों से भरी त्रिलोकी की कलिका आप से उन्मीलित होती है।

काष्ठं वन्हिरिवानलं दिनकर, स्तैलं तिलं खं घट,
पुष्पं गन्ध इवाम्बरं च पवन, स्तोयं रसोऽङ्गं बलम्।
भानुं भा लवणाकरञ्च लवणो, गोरक्ष ! दुग्धं घृतं,
रत्नं रोचिरिवाखिलं त्रिभुवनं, व्याप्य स्थितो भ्राजसे॥२७॥

जैसे काष्ठ को वह्नि, वह्नि को सूर्य, तिल को तेल, घट को आकाश, पुष्प को गन्ध, अन्तरिक्ष को वायु, जल को रस, अङ्ग को बल, भानु को प्रभा, लवणाकर को लवण, दुग्ध को घृत और रत्न को कान्ति व्याप्त किये रहते हैं। हे गोरक्ष ! हे विभो !! ऐसे ही आप अखिल त्रिभुवन को व्याप्त कर विराजमान हैं।

वेदो व्यासमिवाम्बुदो नभसमब्धिं निम्नगा मेदिनीं,
बीजं तैलमपो लता तरुमिभो, रेवां रवो गह्वरम् ।
सर्गः कश्यपमग्निराज्यमनिलं, गन्धः कविं कल्पना
योग स्त्वामधिगम्य नाथ ! भुवने, व्यासं गतो भ्राजते ॥

हे नाथ ! हे गोरक्ष !! जैसे वेदव्यास को पाकर वेद, श्रावण मास को पाकर मेघ, सागर को पाकर नदी, पृथ्वी को पाकर बीज, जल को पाकर तेल, वृक्ष को पाकर लता, नर्मदा को पाकर हस्ती, गुहा को पाकर ध्वनि, कश्यप को पाकर प्राणिसर्ग, घृत को पाकर अग्नि, गन्धवह को पाकर गन्ध और कवि को प्राप्त कर कल्पना विस्तीर्ण होते हैं । ऐसे ही आप को प्राप्त कर योगशास्त्र त्रैलोक्य में अपनी व्यापक ज्योति फैला रहा है ।

शुक्तौ रूप्यमपां निधौ गिरिगणाः, स्थाणौ पुमान् के शशी,
रागोऽयं स्फटिके तनूषु शुचिता मुक्ताः पयोबिन्दुषु ।
नीरं धन्वनि नीलिमाम्बरतले, रज्जौ भुजङ्गो यथा,
नाथ ! त्वय्यखिलं तथा जगदिदं, लोके विपर्यस्यते ॥२९॥

हे नाथ ! हे निरञ्जन !! जैसे शुक्ति में रजत, समुद्रतरङ्गों में शैल-माला, स्थाणु में पुरुष, जल में चन्द्र, स्फटिक में रक्तता, शरीर में पवित्रता, ओसकणों में मुक्ता, मरुस्थल में जल, गगन में नीलिमा और रज्जु में भुजङ्ग प्रतीत होते हैं । वैसे ही विपरीत बुद्धि से लोग इस नाम रूपात्मक जगत् का आप में अध्यास करते हैं ।

नानाफेनतरङ्गबुद्बुदभिदाः, सिन्धौ यथा तन्मया,
आकाशः श्वसनोऽनलो जलमिला भेदा स्तथा त्वन्मयाः ।
भेदोऽयं शिवजीवयो रवितथो मिथ्या स्म सन् भासते
यावन्नाथ ! न ते पदाम्बुजरजो,भाजोऽभव न्भूभुजः ॥३०॥

हे नाथ ! हे देव !! जैसे समुद्र में फेन-तरङ्ग-बुद्बुद आदि नाना भेद जलमय होते हैं ; वैसे ही आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी आदि भेद भी आप की लीला है । यह शिव और जीव का मिथ्या भेद राजाओं को तभी तक सत्य भासता रहा । जब तक आप के चरणकमल के रजः-कणों का स्पर्श नहीं किया । अर्थात् आपके शरण में आते ही उन्हें आत्मज्ञान हो गया ।

बन्धुर्बन्धनमात्मजा मतिरुजो, दारास्तु कारागृहाः,
राष्ट्रं भ्राष्ट्रमिदं धनञ्च निधनं, हा ! गौरवं रौरवम् ।
इत्थं भर्तृहरि र्विभाव्य भुवनं, दोषालयं मुक्तये,
युक्तो यत्र यमादिभि र्भज सखे !, गोरक्षसंज्ञं महः ॥३१॥

बन्धु लोग बन्धन हैं, पुत्र बुद्धिरोग हैं, दारा तो कारागार ही हैं, राष्ट्र भ्राष्ट्र=भट्ठी का काम करता है, धन भी निधन का हेतु है और गौरव साक्षात् रौरव नरक है । इस प्रकार संसार को दोषयुक्त देख कर सांसारिक कष्ट की आत्यन्तिक निवृत्ति के लिए उज्जयिनीनाथ महाराजाधिराज भर्तृहरि यम नियमादि साधनों से जिस के शरण गये और मुक्त हो गये, हे सखे ! उस गोरक्ष नामक परं ज्योति का अवलम्बन करो ।

स्वान्तःस्थः शशिनां शतैः प्रविततै, र्वैश्वानरस्यायुतै-,
र्ध्वान्तोऽयं मणिकोटिभि र्दिनमणे, र्लक्षैरजस्रोद्यतैः ।
श्रान्तैः शास्त्रगणैः स्वयुक्तिनिपुणै, रन्यै र्गुणैः प्राणिनां,
नान्तं याति विभो ! विना तव कृपां, कल्पैरनल्पैरपि ॥३२॥

हे विभो ! हे गोरक्षनाथ !! आप की कृपा के विना अनन्त कल्पों तक प्राणियों के हृदय का यह मोहान्धकार कोटि मणियों के प्रकाश से भी नष्ट नहीं होता, सहस्रों प्रलयानल की ज्वालाओं से भी नष्ट नहीं होता,

सैकड़ों पूर्णिमा चन्द्रों की चन्द्रिका से भी नष्ट नहीं होता, लाखों मार्तण्डों के प्रचण्ड किरणों से भी नष्ट नहीं होता, केवल स्वानुकूल युक्तियों के द्वारा अपने सिद्धान्तों की पुष्टि करते करते परिश्रान्त हुए शास्त्रों से भी नष्ट नहीं हो सकता एवं अनेक प्रकार के अन्य उपायों से भी इस अविद्यान्धकार का अन्त नहीं हो सकता।

वाचः सत्यवतीसुतस्य कलिता, मीमांसिता जैमिनेः,
पीता देवहुतीसुतस्य गिलिता, नागेश्वरस्याखिलाः।
भुक्ता युक्तियुजो रुजा कणभुजो, घ्राताक्षपादस्यवा-,
क्तत्त्वं नत्वगमं गुरो! कुरु कृपां, गोरक्ष!! कान्या गतिः?॥२३

: सत्यवतीपुत्र की वाणी का आकलन किया, जैमिनि मुनि की वाणी की मीमांसा की, देवहुती पुत्र की वाणी को पीलिया, नागेश्वर की अखिल गिराओं को निगल गये, युक्तिनिपुण कणाद की वाणी का कष्ट से भक्षण किया तथा अक्षपाद की वाणी को भी सूँघा। तदपि तत्त्वज्ञान नहीं हुआ। हे गुरो! हे गोरक्ष!! आप ही कृपा कीजिये, आप के अतिरिक्त गति ही क्या है?

अन्धो रूपरसं शिला जलरसं, वृक्षाः फलानां रसं,
बन्ध्या पुत्ररसं फणी मणिरसं, शुक्तिश्च मुक्तारसम्।
भेकः पद्मरसं बकोऽमृतरसं, काको विपञ्चीरसं,
दर्वी पाकरसञ्च वेत्ति यदि ते, गोरक्ष! दक्षे दृशौ॥२४॥

हे गोरक्ष! यदि आप की कृपा दृष्टि हो जाये तो अन्धा भी रूप के रस को, शिला भी जल के रस को, वृक्ष भी फल के रस को, बन्ध्या भी पुत्र के रस को, फणी भी मणि के रस को, शुक्ति भी मुक्ता के रस को, भेक भी अमृत के रस को, काक भी वीणानाद के रस को और दर्वी भी पाक के रस को जान सकते हैं। औरों की तो बात ही क्या?।

'विद्यामर्जय वर्जयन् परुषता, माज्ञां गुरोः पालय,-
न्छीलं शीलय लोलतां परिहर, प्राज्ञैः समं सञ्चर ।
दीने देहि दयस्व शक्तिविकले, काले बलं दर्शय,
नाथेत्थं भवतोपदिष्टपदवी, भाजः श्रियो भाजनम् ॥३५॥

'कठोरता को त्याग कर गुरुजनों की आज्ञा का पालन करते हुए विद्योपार्जन करो, शील का अनुशीलन करो, लोलता का परिहार करो, प्राज्ञों के साथ व्यवहार करो, अकिञ्चन दीन को दान दो, दुर्बल पर दया करो और अवसर आने पर बल दिखाओ'! हे नाथ! इस प्रकार आपकी दिखाई हुई पद्धति से चलने वाले राज्यलक्ष्मी तथा मोक्षलक्ष्मी के पात्र होते हैं।

शैलान् मेरुमया न्छिला मणिमयीः, शाला विशालामयी,-
र्गाः स्वर्धेनुमयीः स्त्रियो रतिमयी, गङ्गामयी निम्नगाः ।
वृक्षान् कल्पमयान् नरान् सुरमयान्, राज्ञस्तु सच्चिन्मयान्,
गोरक्ष! क्षणदाः सदा क्षणमयीः, कुर्वन् भुवं भ्राम्यसि ॥३६॥

हे देव! आप पर्वतों को मेरुमय, शिलाओं को मणिमय, गृहों को समृद्ध उज्जयिनी नगरीमय, गौवों को कामधेनुमय, स्त्रियों को पतिव्रता-शिरोमणि रतिमय, नदियों को गङ्गामय, वृक्षों को कल्पवृक्षमय, नरों को सुरमय, राजाओं को तो सच्चिदानन्दमय और रात्रियों को उत्सवमय करते हुए भूमण्डल में भ्रमण करते हैं।

बप्पः खड्गमवाप्य दिग्जयमधा, त्तीर्णः प्रतिज्ञार्णवं,
त्रैलोक्यप्रथितप्रतापमहिमा, वीरः प्रतापो नृपः ।
पूर्णः पूर्णपदं गतोऽखिलगुरो!, नेपालभूपालिता,
शैलो हेमपदं त्वदङ्घ्रिकमले, भूमण्डली मण्डिता ॥३७॥

हे अखिलगुरो ! हे गोरक्ष !! आपके चरणकमलों की कृपा से राजन्य शिरोमणि वप्पारावल ने खड्ग प्राप्त कर दिग्विजय किया तथा वीर भूमि राजस्थान में विशाल राजधानी स्थापित की, त्रैलोक्य में प्रसिद्ध प्रताप की महिमा वाले हंसवंशावतंस वीर शिरोमणि महाराजाधिराज प्रतापसिंह ने भीषण प्रतिज्ञार्णव को उत्तीर्ण किया, शालिवाहनकुलदीपक धर्मवीर राजकुमार पूर्ण ने 'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' से निर्दिश्यमान पूर्णपद को प्राप्त किया, सिंहलद्वीप से आते समय पर्वत को काञ्चनमय कर दिया, नेपाल भूमि का पालन किया और भूमण्डली को आप के चरण कमलों ने मण्डित कर दिया।

खे वातेऽप्यनले जले क्षितितले, सोमे रवौ होतरि,
मूर्तिं ते मुनयः स्मरन्ति शुचयो, ज्योतिर्मयीं योगिनः।
त्वद्भासा भुवनं विभाति निखिलं, ब्रह्मादि कीटावधि,
सच्चित्सौख्यमयः पुन स्त्वमकलो, गोरक्ष ! वेद्यः कथम्?॥३८॥

हे विभो ! हे गोरक्ष !! हे अष्टमूर्ते !!! पवित्र अन्तःकरण वाले मुनिजन आकाश-वायु-अग्नि-जल-पृथ्वी-चन्द्र-सूर्य तथा सोमयाजी इन आठों में आप की मूर्ति की भावना करते हैं। ऋतम्भरा प्रज्ञावाले योगिलोग आप की ज्योतिर्मयी मूर्ति का ध्यान करते हैं। हे प्रकाशमय ! आप के प्रकाश से ब्रह्मादि स्तम्बपर्यन्त अखण्ड ब्रह्माण्ड प्रकाशित है। इतने पर भी आप सच्चिदानन्दमय और निष्कल हैं, अखण्डमण्डलाकार हैं ; आप की महिमा अपार है।

वेदान् कल्पलया त्क्षितिं दितिसुता, त्सूर्यं ग्रहग्राहतो,
गङ्गां पातभया त्स्वखानि विषया, द्धाणीं मृषावेधसः।
स्वर्गं वैरिकुला त्खलाच्च सुरभिं, चन्द्रं कलङ्कादपि,
नित्यं रक्षसि नाथ ! तेन विदितां, गोरक्षतां गाहसे ॥३९॥

हे नाथ ! आप कल्प कल्प में वेदों की प्रलयसे, भूमि की दितिपुत्रों से, सूर्य की राहु के ग्रास से, गङ्गा की पाताल पतन भय से, अपनी और अपने भक्तों के इन्द्रियों की विषयों से, सरस्वती की मिथ्यावाद और ब्रह्मा से, स्वर्ग की असुरकुल से, धेनुकी म्लेच्छादि खलों से तथा चन्द्रमा की कलङ्कसे रक्षा करते हैं। इस लिए आप का नाम संसार में 'गोरक्ष' प्रसिद्ध है। क्योकि श्रुति आदियों को गौ कहते हैं, गौवों की रक्षा करने के कारण आपको गोरक्ष कहते हैं।

माता वत्सलतामयो हितपिता, सर्वागमज्ञो गुरु,-
र्जाया हृद्यपतिव्रता शुचिवचः, कान्तोऽनुकूलः पतिः।
सत्पुत्राः सुहृदो बुधाः श्रुतिरतिः, शिष्याः सुशीलान्वयाः,
स्वामी दक्षमति र्नतः परिजनो, नाथ! प्रसादा त्तव ॥४०॥

हे नाथ ! हे आशुतोष !! हे गोरक्ष !!! वात्सल्यमयी माता, हितकर्ता पिता, समस्त आगम निगम के जानने वाला गुरु, अनवद्य और हृद्यरूपा पतिव्रता धर्मपत्नी, कमनीय और अनुकूल पति, संस्कारपूत अग्राम्य वाणी, सत्पुत्र, विद्वान् मित्र, श्रुति में अनुराग, सुशील तथा कुलीन शिष्य, विभज्यभोजी दक्षिण तथा विवेकी स्वामी और आज्ञाकारी नम्र परिजन; यह समस्त सुखसामग्री आप के प्रसाद से प्राप्त होती है।

स्थातुं मेरुशिरोऽवितुं हरिरिभो, यातुं प्रहर्तुं पवी,
रन्तुं नन्दनमप्सरोभिरमृतं, पातुं गुरुः शिक्षितुम्।
कल्पः कल्पितुमश्वितुं त्रिभुवनं, स्नातुञ्च मन्दाकिनी,
प्राप्तं नाथ! तवाङ्घ्रिसेवनफलं, वन्दारुवृन्दारकैः ॥४१॥

निवास के लिए मेरु मस्तक है, रक्षक हरि हैं, वाहन ऐरावत है, शस्त्र वज्र है, अप्सराओं के साथ विहार करने के लिए नन्दनोद्यान है, पीने के लिए अमृत है, शिक्षा देने के लिए बृहस्पति है, अभिलषित वस्तु प्रदान

करने वाला कल्पवृक्ष है, और जलविहार के लिए मन्दाकिनी है। हे नाथ! हे गोरक्ष !! नमस्कारशील देवताओं ने आप के चरण कमलों की सेवा का अच्छा फल पाया है।

रामो रावणरावणो रणमुखे, रामोऽर्जुनस्यार्दने,
रामो लम्बहतौ हरि मुरवधे, वृत्रक्षतौ वृत्रहा।
कृष्णः कंसवधेऽप्यमङ्गलहतौ, कृष्णः पुराणादिषु,
कृष्णः कर्णवधे विधि र्मधुवधे, गोरक्ष! ते ध्यायति ॥४२॥

हे गोरक्ष ! हे मङ्गलमय !! सहस्रबाहु के वध में परशुरामने, त्रैलोक्य रावण रावण के वध में रामचन्द्र ने, प्रलम्बासुर के वध में बलराम ने, मुरदैत्यवध में मुरारि ने, वृत्रासुर के वध में इन्द्र ने, कंस के वध में कृष्णचन्द्र ने, पुराणादियों की रचना के आदि में विघ्नों का नाश करने के लिए पुराणमुनि व्यासने, कर्ण के वध में अर्जुन ने और मधु कैटभ के वध के लिए विधाता ब्रह्मा ने आप का ध्यान किया है। औरों की तो बात ही क्या है ?।

भक्ता भक्तिविधौ जना धनविधौ, सिद्धौ सुधीसाधकाः,
विप्रा यज्ञविधौ नृपा रणविधौ, सिद्धाः समाधौ धिया।
देवा भोगविधौ बुधाः कृतिविधौ, वेधाश्च सन्ध्याविधौ,
यक्षा मोक्षविधौ समे सुखविधौ, ध्यायन्ति गोरक्ष! ते ॥४३॥

हे ज्योतिःस्वरुप ! हे शिव !! भक्तलोग भक्ति की प्राप्ति के लिए, साधारण जन धन की प्राप्तिके लिए, बुद्धिमान् साधक लोग सिद्धि की प्राप्ति के लिए, ब्राह्मण लोग निर्विघ्न यज्ञपूर्ति के लिए, क्षत्रिय लोग युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए, सिद्ध लोग ऋतम्भरा प्रज्ञा से समाधिमें, देवता लोग भोगों की शाश्वत प्राप्ति के लिए, कवि लोग काव्य रचना के लिए,

हिरण्यगर्भ सन्ध्योपासन में, यक्षलोग मोक्ष की प्राप्ति के लिए और समस्त प्राणिगण सुखप्राप्ति के लिए आप का ध्यान करते हैं।

कैलासाचलतुङ्गश्रृङ्गनिहितौ, पादौ शिरो द्याङ्गतं,
धारा ब्रह्मकमण्डलोः सलिलतः, गोरक्ष ! कीर्णा जटाः।
दत्तोऽयं हरिदङ्गनाभिरुडवः, पुष्पाञ्जलि स्ते प्रभो !,
स्तौति त्वामनिशं भगीरथनृपो, कर्पूरदीपः शशी ॥४४॥

हे गङ्गाधर ! हे गोरक्ष !! कैलाश के उत्तुङ्ग शिखर पर आप के चरण प्रतिष्ठित हैं, मस्तक अन्तरिक्ष में देदीप्यमान है, जटायें दिङ्मण्डल में विस्तीर्ण हैं. ब्रह्मा के कमण्डलु से गङ्गाजल की धारा आपके शिर पर गिर रही है, हे विभो ! चारों ओर से दिगङ्गनायें तारागणों की पुष्पाञ्जलि दे रही हैं, पूर्णचन्द्र का कर्पूरदीपक जल रहा है और सम्मुख खड़े महाराजा भगीरथ निरन्तर आपकी स्तुति कर रहे हैं।

पातालं चरणौ क्षमा कटितटी, कुक्ष्यन्तरिक्षं तव,
प्राणा वायुरुरः सुमेरुशिखरं, धर्मादयो बाहवः।
सूर्याचन्द्रमसौ दृशौ श्रुतिपुटी, काष्ठा गिरो वाङ्मयं,
सत्यं मूर्ध्नि विराजसि स्वमहसा, गोरक्ष ! मृत्युञ्जय !! ॥४५॥

हे गोरक्ष ! हे मृत्युञ्जय !! पाताल आपके चरण हैं, पृथिवी कटी है, अन्तरिक्ष कुक्षि है, वायु प्राण हैं, सुमेरुशिखर वक्षस्थल है, धर्म-अर्थ-काम तथा मोक्ष चार बाहु हैं, चन्द्र सूर्य नेत्र हैं, दिशायें श्रोत्र हैं, वेदादि समस्त वाङ्मय वाणी है और सत्यलोक मस्तक है अपने ही तेज से आप का विराट स्वरूप विराजमान है।

पातालं दृढमूलमावलयितं, शेषेण काण्डः क्षमा,
सारो मेरुरयं लतास्तु हरितः, पुष्पाणि तारागणाः।

सूर्याचन्द्रमसौ फले सुरनरा, ब्रह्मादयः पक्षिण-,
श्छाया नीलबलाहका विजयसे, गोरक्षकल्पद्रुम ! ॥४६॥

हे गोरक्षकल्पद्रुम ! पाताल लोक आपका दृढमूल है, उसमें शेष-नाग कुण्डली मार कर बैठा है, पृथ्वी मूल के ऊपर का प्रधान काण्ड है, सुमेरु पर्वत मध्य का सार भाग है, दशों दिशायें विशाल शाखा हैं, ग्रह-नक्षत्रादि विकसित पुष्प हैं, सूर्य और चन्द्र मधुर फल हैं, हिरण्य गर्भादि सुर-नर-किन्नर-नाग प्रभृति समस्त प्राणिगण शाखा २ में नीड बना कर बैठे हुए नाना प्रकार के पक्षिगण हैं और नीले जलधर सघन छाया हैं ; इस प्रकार आपका विशाल स्वरूप शोभायमान है ।

धर्मो मूलमयं पिनद्धमभितः, स्कन्धाश्च वेदा इमे,
शाखास्ताः स्मृतयः पुराणविटपा, गोरक्षकल्पद्रुम ! ।
अन्य द्वाङ्मयमेव पल्लवचयः, पुष्पाणि यज्ञादय,-
श्छाया तेऽभ्युदयो वयोऽपि मुनयो, मुक्तिः फलं कोमलम् ।।४७।।

हे गोरक्षकल्पवृक्ष ! समस्त ब्रह्माण्ड का धारण करने वाला यह धर्म ही आपका सब प्रकार बलिष्ठ मूल है, साङ्गोपाङ्ग ये वेद ही प्रधान स्कन्ध हैं, उपस्मृतियों के सहित प्रसिद्ध अष्टादश स्मृतियाँ ही शाखा प्रशाखा हैं, उपपुराणों के सहित अष्टादश पुराण ही विस्तीर्ण शाखाओं के अग्रवर्ती विटप हैं, शेष वाङ्मय ही समस्त पल्लव समुदाय है, यज्ञ दानादि शुभ कर्म विकसित कुसुम हैं, सत्क्रियाओं से उत्पन्न अभ्युदय ही विश्रामप्रद सान्द्र छाया है, योगि मुनि लोग ही पक्षिगण हैं और मुक्ति ही आपका सरस तथा कोमल फल है ।

पातालं तव मूलबन्धनमियं, भूरुड्डियानं नभो,
बुद्धा कुण्डलिनी रवो घनरवो, जालन्धरं द्यौ र्विभो !।

चन्द्र स्तत्र सुधापृषन्ति कमलं, सत्यं सहस्रारकं,
हंसो हंसरुचिः सदा विजयते, दिव्ये समाधौ भवान् ॥४८॥

हे विभो ! हे गोरक्ष !! पाताल आपका मूलबन्ध है, यह भूमि उड्डियानबन्ध है, आकाश प्रबुद्ध कुण्डलिनी है, मेघों की गम्भीर गर्जना अनाहत नाद है, द्युलोक जालन्धरबन्ध है, सत्यलोक सहस्रार कमल है, चन्द्रमा उसमें सुधाबिन्दु समूह है और सूर्य ही ज्योतिर्मय ब्रह्म है; इस प्रकार आप सदैव दिव्य समाधि में विराजमान हैं।

कौपीनं जलधि र्दिशोऽञ्चलमियं, श्रोणी क्षमा भोगिभू-,
रूरू मेरुरयं सुमेरुरचलो, दिव्यं वपु र्भ्राजते ।
चन्द्रार्कौ मणिकुण्डले ध्रुवपदं, मूर्धा नभो मूर्धजा-,
स्तारालो तव शेखरः शुचिरुचि, र्गोरक्षनाथ ! प्रभो !! ॥४९

हे नाथ ! हे महेश्वर !! अतल वितलादि सप्त लोक आपके ऊरुदण्ड हैं, भूर्लोक श्रोणिमण्डल है, सुमेरु शैल मेरुदण्ड है, सप्त सागर कौपीन है, दिशायें उत्तरीयाञ्चल हैं, शशिभास्कर मणिमय कुण्डल हैं, ध्रुवलोक मस्तक है, गगनमण्डल केश कलाप है और तारावली स्वच्छ मुकुट है। एवं आपका दिव्य शरीर दिव्य भूषणों से भूषित है।

कूर्मः पादतले वसत्यवहितः, पातालमङ्गुष्ठके,
तस्याग्रे च तलातलं पुरुतलं, ते पादपृष्ठे प्रभो ! ।
गुल्फे रम्यरसातलं च सुतलं, जागर्ति जङ्घायुगे,
ऊर्वोश्चाप्यतलं करालवपुषा, कालाग्निरुद्रो भवान् ॥५०॥

भूर्लोक स्तव गुह्यकेऽद्भुतभुव, र्लोकोऽप्युपस्थे स्थितः,
स्वर्नाभौ हरिरत्र राजसि मह, र्दण्डाङ्कुरे राजते ।

लोको दण्डबिले जनो जनिजुषां, तद्दण्डनाले तपः,

सत्यं सत्यनिधान ! मूलकमले. गोरक्ष ! विध्यादयः ।५१।

हे भूमात्मन् ! हे प्रभो !! हे गोरक्ष !!! कूर्मराज आपके पादतल में सावधान तथा निश्चल होकर निवास करता है, पाताललोक आपके अङ्गुष्ठ में है, अङ्गुष्ठ के अग्रभाग में तलातल है, पादपृष्ठ में महातल है, गुल्फों में रसातल है, जङ्घाओं में सुतल है और ऊरु देश में अतल विद्यमान है। एवं सप्तलोकों के अधिनायक कालाग्नि रुद्र होकर आप निवास करते हैं। भूर्लोक आपके पायु प्रदेश में, भुवर्लोक उपस्थ में, स्वर्लोक नाभि में है, यहाँ पर आप इन्द्र के रूप से विराजमान हैं ; आपके मेरुदण्ड के अङ्कुर में महर्लोक है, मेरुदण्ड के बिल में जनलोक है, मेरुदण्ड नाल में तपोलोक है और हे सत्यनिधान ! आपके सहस्रार कमल में सत्यलोक शोभायमान हैं। सत्यलोकादियों में आप ब्रह्मादि के रूप से निवास करते हैं।

पातालोदरवासिनो विषधराः, क्रोधाग्निदग्धान्तरा,

लोकाः शोकहता भुवस्तलगताः, सौख्यं मनाङ् नाकिनाम् ।

ब्रह्माद्या रचनावनादनविधौ, क्लिष्टा महान्तोऽपि ते,

सान्द्रानन्दसुधाम्बुधि विजयसे, गोरक्ष ! भूम्नात्मना॥५२॥

पातालवासी विषधर नाग क्रोधाग्नि से स्वयं दग्ध हैं. भूतल निवासी मानव शोक से सन्तप्त हैं. स्वर्गलोक वासी देवताओं का सुख स्वल्पकाल के लिए है, ब्रह्मादि पूर्व गुरुजन सृष्टिस्थितिलय में व्यस्त हैं ; ये सब 'सूत्रे मणिगणा इव' सच्चिदानन्द सुधासिन्धु और सर्वव्यापी आपके अन्तर्गत हैं। उपाधि परिच्छिन्न होनें से इनमें दुःखमात्रा है, आप भूमा हैं क्लेश रहित हैं।

पादा दिक्करिणः पयोधिरुपधिः, सिंहासनं भूतलं,

दण्डो मेरुरयं ग्रहा मणिगणा, श्छत्रं नभोमण्डलम् ।

चन्द्रार्कौ मणिदीपकौ सुविमला मन्दाकिनी शेखरो,
दिक्पालाः परिचारका विजयसे. गोरक्ष ! दिव्यश्रिया ।५३॥

यह विशाल भूमण्डल सिंहासन है, आठों दिग्गज प्रतिष्ठित पाद हैं, क्षीरादि सप्त समुद्र स्वच्छ उपधान हैं सुवर्णमय सुमेरु पर्वत छत्रदण्ड है, नभोमण्डल छत्र है, ग्रहनक्षत्रगण मुक्तामणियों का झालर है, छायानाथ कलानाथ-उष्णरश्मि शीतरश्मि दो उज्ज्वल मणिदीपक हैं, विमल मन्दाकिनी शुभ्र शेखर है और समस्त दिक्पाल आपके परिचारक हैं। हे गोरक्षदेव ! आप इस अनुपम सिंहासन में विराजमान हैं ; आपकी दिव्य शोभा सर्वत्र फैल रही है।

ग्लानिं ग्लौ गिलति प्रचण्डकिरणो, नीलं लुनीते तमः,
कल्पान्ते वडवानलः कलयते, कल्लोलिनीवल्लभम्।
काल स्तूलमिवानलः कवलय,त्याब्रह्मलोकं जग-,
त्तं कालं कवलीकरोति कलया, गोरक्ष ! ते दृक्कला ॥५४॥

राकानाथ प्राणियों की ग्लानि को अपने पीयूषमय किरणों से निगल जाता है, तिमिरारि अपने तीक्ष्ण करों से रजनी के अन्धकार को काट देता है, कल्पान्त में वडवानल कल्लोलिनीपतियों का आचमन कर लेता है, जैसे तूलराशि को अग्नि क्षण भर में भस्म कर डालता है, ऐसे ही ब्रह्मलोक पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड को काल कवलित कर जाता है; उस काल को भी आपकी दृक्कला निमेष मात्र में कवलित कर देती है। अर्थात्—हे गोरक्ष ! हे करुणामय !! जिसपर आपकी कृपादृष्टि हो जाती है, वह अजर अमर हो जाता है।

मौलौ मालतिमालिका तव विभो,! यज्ञोपवीतं सितं,
कैलासस्य हिमालयस्य दुहिता, मुक्तासरोऽच्छो भुवः।
जह्नोराचमनं भगीरथयशो,वल्ली पयोधेः प्रिया,
निश्रेणी सगरात्मजोद्धृतिविधौ, गोरक्ष ! नो रक्षतात् ॥५५॥

हे विभो ! हे गोरक्ष !! जो आपके उज्ज्वल मौलिप्रदेश की ललित मालता पुष्पों की माला है, जो कैलास का दुग्ध धवल यज्ञोपवीत है, जो शैलराज हिमालय की वात्सल्यपात्री पुत्री है, जो रत्नगर्भा वसुन्धरा का स्वच्छ मुक्ताहार है, जो दानवीर राजर्षि जन्हु का पवित्र आचमन है, जो पुरुषार्थियों के पथप्रदर्शक महाराजा भगीरथ की कीर्तिलता है, जो समुद्र की वल्लभा पट्टमहिषी है और जो सगरपुत्रों के स्वर्गारोहण के लिए अधिरोहिणी है; वह हम लोगों का कल्याण करे।

शूलं शैलसुतां कलाधरकलां, गङ्गां विभूतिं वृषं,
व्यालं हालहलं कलिन्दमनलं, धत्ते प्रवृत्त्यै भवान् ।
बालां बालमृणालकोमलरुचं, गोरक्षसंज्ञां तनुं,
कैवल्यात्मकलामबालमहसा, धत्ते निवृत्त्यै भवान् ॥५६॥

हे देव ! हे नटराज !! संसार की प्रवृत्ति के लिए आप दक्षिण हस्त में त्रिशूल को, वामाङ्ग में शैलसुता को, भालमूल में शशिकला को, उत्तमाङ्ग में गङ्गा को, सर्वाङ्ग में उज्ज्वल विभूति को, वाहन के स्थान में धर्मरूप वृष को, यज्ञोपवीत के स्थान में वासुकि नाग को, त्रैलोक्य रक्षा के लिए गले में हलाहल को, नेत्र में त्रिभुवन दीपक रवि को, ललाट में अनल को धारण करते हैं और निवृत्ति के लिए बालकमल के नाल के तुल्य कोमल कान्तिवाले, अबालपराक्रम वाले कैवल्यात्मक बाल गोरक्ष रूप को धारण करते हैं। एवं देशकालानुकूल पात्र को प्रवृत्ति या निवृत्ति में नियुक्त करते हैं।

वेदानाकलयन् स्मृतिं विपुलयन्, भेदान् समुन्मूलयन्,
जाड्यं व्याकुलयन् कलां किसलयं, स्त्रैलोक्यमुल्लासयन् ।
वाचं पल्लवयन् धियो विमलयन्, बोधेन्दुमुन्मीलयन्,
कीर्तिं कन्दलयन् दिशो धवलयन्, गोरक्ष ! गां भ्राम्यसि ।५७।

हे भुवनगुरो ! हे गोरक्ष !! आप वेदों का आकलन करते हुए, स्मृतियों का विस्तार करते हुए, जीवशिवादि भेदों का उन्मूलन करते हुए, जडता को व्याकुल करते हुए, कलाओं को किसलयित करते हुए, त्रिलोकी को उल्लसित करते हुए, गीर्वाणवाणी को पल्लवित करते हुए, अन्तः-करणों को निर्मल करते हुए, प्रबोध चन्द्रमा का उदय करते हुए, कीर्ति को कन्दलित करते हुए और कन्दलित कीर्तिलता से दशों दिशाओं को धवलित करते हुए भूमण्डल में भ्रमण करते हैं।

अम्भोजै र्नलिनी स्थली मृगकुलैः, कल्लोलिनी सज्जलैः,
शैलाली तरुभि र्लताः सुमफलै, र्दिङ्मण्डली पालकैः ।
हंसाली च कलैः कला च कुशलैः, शीलैश्च वंशावली,
गोरक्ष ! त्वदुदारपादकमलै, र्लोकत्रयी मण्डिता ॥२८॥

हे नाथ ! प्रफुल्ल कमलों से सरोवर, निश्शङ्क मृगकुलों से वनस्थली, निर्मल जल से नदी, वनस्पतियों से शैलमाला, पुष्प और फलों से लतायें, दिक्पालों से दिङ्मण्डली, कल कल शब्दों से हंसावली, कुशल कलाकारों से कलायें, शील सदाचार से कुल मण्डित होता है। एवं आपके उदार चरणकमलों से त्रिलोकी ही मण्डित है।

नक्षत्रेषु सुधाकरः करिवरे, वज्री फणीशे हरि-,
र्हंसांसे विधिरम्बुदे तडिदलिः, पद्मे वृषो गोकुले ।
अभ्रे तीव्रकरोऽवनौ नरवरो, वारांनिधौ मन्दरो,
गोरक्ष ! त्रिमयो भवांस्त्रिनयनो, लोकत्रये भूषणम् ॥२९॥

हे शिव ! हे गोरक्ष !! नक्षत्रमाला में चन्द्रमा ऐरावत पर इन्द्र, शेषशय्या पर नारायण, राजहंस के स्कन्धों पर ब्रह्मा, काले मेघों में विद्युल्लता, पद्मकोश में भ्रमर, गोकुल में वृषभ, गगन में गगनमणि, पृथ्वी पर राजा और सागर में मन्दराचल भूषण हैं; एवं आप त्रिमय हैं और

त्रिनेत्र हैं ! अतः त्रैलोक्य में भूषण हैं। ॐकार की अ-उ-म मात्रात्रयी भूर्भुवः स्वः व्याहृतित्रयी, गायत्री पादत्रयी, ऋग्-यजुः-साम वेदत्रयी गार्हपत्य-आहवनीय दक्षिण अग्नित्रयी तथा कर्म-उपासना-ज्ञान निगमकाण्डत्रयी सब कुछ आप ही हैं। इसलिए त्रिमय हैं।

कैलासः स्फटिकाचलस्तु निलयः, श्वेतो वृषो वाहनं,
शुभ्राभ्रावयवो भवांश्च भसितं, तत्रोपलिप्तं पुनः।
कण्ठे शेष उदीर्णहासवदनं, मौलौ विधुः स्त्रधुनी,
भासा लुप्तवपु विभो ! गिरिसुता, निश्शङ्कमङ्के स्थिता ॥६०॥

हे अर्धनारीनटेश्वर ! स्फटिकमणिमय कैलास आप का आवासभवन है, शुक्लवर्णवाला वृषभ वाहन है, आप के सर्वावयव शरद् ऋतु के शुभ्र अभ्रों के तुल्य हैं, उस पर सर्वाङ्ग में दुग्ध धवल विभूति का उद्धूलन किया हुआ है, कण्ठ में कुमुदकान्ति शेषनाग का हार पड़ा है, मुख से अट्टहास की ज्योत्स्ना दिशाओं में फैल रही है, भाल पट्ट पर चन्द्र की अमृतकला विराजमान है, और जटामुकुट त्रिपथगा गङ्गा से शोभायमान है; इस प्रकार समग्र विशदकान्तिमय सामग्री की प्रौढज्योतिर्मयी जवनिका से गात्रलता के लुप्त हो जाने से गिरिजा आप के वामाङ्ग में निश्शङ्क विराजमान है।

हंसा मानसरोवरे मुनिवराः, सच्चिन्मये सागरे,
शीतांशुः शरदम्बरे जलधरे, शक्रायुधं शोभते।
मेरौ शक्रपुरीह नन्दनवनं, तस्मिंश्च कल्पद्रुमो,
योगाम्बूज्ज्वलमानसे लसति ते, गोरक्ष ! पादाम्बुजम्।६१

हे अजन्मन् ! हे गोरक्षदेव !! मानसरोवर में हंस, सच्चिदानन्दसिन्धु में मुनिवर, शरद् ऋतु के विमल गगनतल में पार्वण चन्द्र, जलधरपटल

पर इन्द्रधनुः, सुमेरु पर अमरावती, अमरावती के मध्य में नन्दनोद्यान और नन्दनोद्यान में कल्पवृक्ष शोभायमान होता हैं। एवं योगाभ्यास के जल से निर्मल हुए मानसपटल पर आप का चरणकमलयुगल विलसित होता हैं।

सौन्दर्ये मदनं धनेषु धनदं, वाचस्पतिं वाङ्मये,
वैन्यं कीर्तिषु पौरुषे भगिरथं, दानेषु कर्णं बलिम्।
रामं चापभृतां बलेषु मरुतं, चाज्ञाविधौ वासवं,
यस्त्वामाश्रयते तमत्र कुरुषे, गोरक्षकल्पद्रुम! ।६२।

हे आशुतोष! हेकामद!! हेगोरक्षकल्पद्रुम!!! जो आप का आश्रय लेता है आपके शरण में आता है। उस को आप सौन्दर्य में रतिपति कामदेव, धनियों में धनद कुबेर, वाङ्मय में वाचस्पति देवगुरु, कीर्तिशालियों में पृथ्वी का नियामक पृथुराज, पुरुषार्थियों में भगीरथ, दानियों में बलि तथा कर्ण, धनुर्धारियों में त्रैलोक्यवीर राम, बलशालियों में वायु और अप्रतिहत आज्ञा वालों में देवराज इन्द्र कर देते हैं।

नो विद्या न कला न भा न सुषमा, नो बुद्धयो नो नयो,
नो मित्रं न कलत्रपुत्रवसवो, नो सिद्धयो नो जयः।
नो राज्यं न यशो न कीर्तिरतुला, नो मुक्तिरायुःक्षये,
गोरक्ष! क्षपितक्षये तव पदे, सन्देहिनां देहिनाम्।६३।

हे मृत्युञ्जय! हे गोरक्ष!! जन्ममृत्यु के बन्धन का क्षय करने वाले आप के पद में जिन का दृढ़ विश्वास नहीं है; उन्हें न अनवद्य विद्या, न निष्कलङ्क कला, न प्रौढ प्रतिभा, न कमनीय कान्ति, न सद्बुद्धि, न धर्मानुकूल नीति, न विश्वासपात्र मित्र, न पवित्र कलत्र, न सच्चरित्र पुत्र, न निर्धन का पालन करने वाला धन, न विशुद्ध सिद्धियाँ, न धर्मयुद्ध में

विजय, न निष्कण्टक राज्य, न विशद यश, न अतुल कीर्ति और न देहावसान में मुक्ति ही मिलती है; संशयात्मा विनश्यति।

पीतोल्लङ्घितबद्धशुष्कमथिता,म्भोधे ! वृथा ते स्मयः,
प्रोत्खाते ! प्रथिते! हृते ! लयमिते!, प्रत्याहृते ! काश्यपि!।
कैलासाचल ! मन्दराचल ! किल, द्रोणाचलेन्द्राचलौ !,
गाम्भीर्यं गुरुता धृतिः शशिधरे, गोरक्षनाथे स्थिताः।६४।

हे समुद्र ! तुम्हारा गम्भीरता का अभिमान वृथा है; क्योंकि अकेले मन्दराचल ने क्षुब्ध कर तुम्हारे हृदय से बहुमूल्य रत्न निकाल लिए, एक वृद्ध तपस्वी ने तुम्हें आचमन के तुल्य पी डाला, एक साधारण वानर ने अनायास तुम्हारा उल्लङ्घन कर दिया, तपस्विकुमारों के इसारे पर कौतुकी मर्कटों ने तुम्हें बन्धन में डाल दिया तथा प्रलय काल में संवर्तक अग्नि ने कई वार तुम्हारा जीवन शोष डाला है। हे उर्वि ! हे पृथ्वि !! तुम्हारा गुरुता का अभिमान निरर्थक है, देखो-एक क्षुद्र दितिपुत्र खेल २ में तुम्हें हर कर पाताल को चला गया और अनायास उससे खोस कर एक जङ्गली वराह कन्दुक के सदृश अपने दंष्ट्राङ्कुर में रख कर ले आया, एक राजा ने अपनी धनुष्कोटि से तुम्हारा प्रथन कर समान कर दिया, मेध्याश्व का अन्वेषण करते हुए राजकुमारों ने तुम्हें खोद डाला एवं कल्पान्त में पहले जलमय हो जाती हो, फिर भस्ममयी को वायु उडा कर अपने में लीन कर लेता है। हे पर्वतो ! तुम लोगों का धैर्य का अभिमान भी व्यर्थ है, क्योंकि कैलासाचल को लङ्कावासी एक उन्मत्त राक्षस ने उठाकर नचा दिया, मन्दराचल को उखाड़ कर देव दैत्यों ने मन्थानदण्ड बनाया और चक्र के समान घूमा दिया, द्रोणाचल को विशल्यवल्ली के लिए एक शाखामृग ने तूलराशि के तुल्य आकाश में उड़ा दिया और सब से अधिक धीरता का अहङ्कारी काञ्चनाचल भी

युगान्तक संवर्तकों के भ्रूभङ्ग से ही विचलित तथा विगलित हो जाता है।
चन्द्रमौलि भगवान् गोरक्षनाथ में गम्भीरता-गुरुता-धीरता आदि धर्म नित्यस्थित हैं। अर्थात्—नामरूपात्मक नाशवान् है, ब्रह्म अविनाशी है।

विद्या ज्ञानफला नदी जलफला, प्रज्ञाफला योगिनो,
वाणी सत्यफला सती पतिफला, रक्षाफला भूभुजः।
विप्रा वेदफला विशः कृषिफला, सेवा फला अन्त्यजा,
गोरक्ष ! त्वदुपासनामृतफला, प्रेक्षाऽन्यथा निष्फलाः६५

हे त्रिनेत्र ! हे गोरक्ष !! ज्ञान विद्या का फल है, जल नदी का फल है, ऋतम्भरा प्रज्ञा योगियों का फल है, सत्य वाणी का फल है, पति पतिव्रता का फल है, प्रजापालन राजाओं का फल है, वेद विप्रों का फल है, कृषि वैश्यों का फल है, सेवा शूद्रों का फल है एवं आप की उपासना कर अमृतपद की प्राप्ति करना बुद्धि का फल है। यदि उक्त फल इनमें नहीं हैं तो सब निष्फल हैं।

गावः क्षीरफला हया गतिफला, इज्याफला ऋत्विजो,
देवा भोगफला रणा जयफला, वीणाफला गीतयः।
सेवा तुष्टिफला कला कृतिफला, मुक्ताफलाः शुक्तयो,
लोका स्त्वत्पदपद्मपूजनफला, नाथान्यथा निष्फलाः ! ॥६६॥

हे नाथ ! हे देव !! उत्तम गति अश्वों का फल है, विजय युद्ध का फल है, क्षीर गौवों का फल है, दिव्य भोग देवताओं का फल है, वीणा सङ्गीत का फल है, प्रसन्नता सेवा का फल है, रचना कला का फल है, मुक्ता शुक्तियों का फल है और आपके पदपद्मों की पूजा प्राणियों का फल है; यदि इन में पूर्वोक्त फल नहीं हैं तो सभी निष्फल हैं!।

यस्मिञ्छान्तरसे प्रकाशितरसे, सर्वे रसा नीरसा-,
स्तं पीत्वा मुदिता निरन्तरममी, गोरक्ष ! योगीश्वराः ।
स्वाराज्येऽपि न ते स्पृहां विदधति, त्वद्ध्यानधौताशयाः,
हंसानां किल मानसे विलसतां, किं पङ्किलैः पल्वलैः ? ॥६७॥

हे सदाशिव ! हे गोरक्ष !! परब्रह्म रस का प्रकाश करने वाले जिस शान्त रस का आस्वादन कर लेने पर संसार के समस्त रस नीरस हो जाते हैं ; उसी चिन्मयशान्त रस का पान कर आप के ध्यान से निर्मल आशय वाले ये योगिलोग निरन्तर प्रमोदसागर में निमग्न हैं । अतएव इन्द्रपद को भी तुच्छ दृष्टि से देखते हैं, सांसारिक भोगों की तो वात ही क्या ? मुक्तामय मानसरोवर में विहार करने वाले राजहंसों का ग्रामीण मलीन कीचड़ वाले अल्प जलाशयों से क्या प्रयोजन ? ।

सूर्याचन्द्रमसौ स्फुलिङ्गसदृशौ, सूचीव हेमाचलः,
सिन्धु र्बिन्दुवदम्बरं विवरव, त्सूक्ष्माणुवद् भूरियम् ।
यस्यां भाति ऋतम्भरा विजयते, प्रज्ञा महायोगिनां,
ते त्वद्दृष्टिनिपातमात्रकृतिनो, गोरक्ष ! का ते स्तुतिः ? ॥६८॥

हे अनन्त ! हे गोरक्ष !! महायोगियों की जिस ऋतम्भरा के आलोक में प्रचण्ड तेज़ सूर्य और चन्द्र लघु स्फुलिङ्ग तुल्य दिखाई देते हैं, ब्रह्माण्ड का आधार स्तम्भ हेमाचल सुमेरु सूक्ष्म सूची के सदृश दृष्टिगोचर होता है, विस्तीर्ण जलराशि समुद्र क्षुद्र बिन्दु के समान प्रतीत होता है, जिस की कुक्षि में समस्त चराचर जगत् सावकाश विद्यमान है वह आकाश भी अल्प छिद्र के सदृश दीखता है और यह विपुला पृथ्वी परमाणु के समान प्रतीत होती है । वे सिद्ध महर्षि आप के दृष्टिपात मात्र से कृतकृत्य हैं ; आप की स्तुति कोई कैसे करे ?

भुक्तं व्याकरणं पुराणसहितं, न्यायश्चिरं चर्वितो,
मीमांसाधिगता धृता श्रुतिततिः, काव्यं समास्वादितम् ।
वेदान्ता दलिता चिराय मथितः, शिष्टागमाम्भोनिधि-,
र्गोरक्ष ! क्षपितं वयो वयमहो !, मोक्षाय नो दीक्षिताः ॥६९॥

हे ज्ञानमय ! हे गोरक्षदेव !! हम लोगों ने दत्तचित्त होकर व्याकरण का भोजन किया सावधानी से पुराणों की आवृत्तियाँ कीं, चिरकाल तक न्याय का चातुरी से चर्वण किया, मीमांसापूर्वक मीमांसा का अध्ययन किया, ध्यान से श्रुतियों का धारण किया, भावुकता पूर्वक दिव्य काव्यों का आस्वादन किया, शान्त और दान्त होकर वेदान्तों का विदलन किया और चिरकाल पर्यन्त अवशिष्ट आगमनिगमादि समुद्र का भी मथन किया। अहो ! आयु का व्यर्थ क्षय किया किन्तु मोक्ष के लिए दीक्षा नहीं ली। अर्थात् शास्त्रों का बाह्य सिद्धान्त भेद देख कर हमारी बुद्धि भ्रान्त हो गई, गुरु वचन में विश्वास कर समन्वय नहीं किया।

सांख्यं सूर्यसुता त्रयी त्रिपथगा, योगः सरस्वत्ययं,
मीमांसाद्वितयं विरञ्चितनयो, वैशेषिकं कौशिकी ।
न्यायः शोण उदारनिर्झरगणा, स्तन्त्राण्यसंख्यान्यहो !,
विद्वन्मोदतरङ्गिणो रसनिधे !, त्वय्येव विश्राम्यति ॥७०॥

हे आनन्दसिन्धो ! हे गोरक्ष !! ऋग्-यजुः-साम यह वेदत्रयी स्वर्ग-मर्त्य-पाताल में गमन करने वाली मन्दाकिनी-भागीरथी-भोगवती त्रिपथगा गङ्गा है, सांख्यशास्त्र सूर्यसुता यमुना है, यह योगशास्त्र गुप्त रूप से वहने वाली सरस्वती है, पूर्वोत्तर मीमांसायुगल ब्रह्मपुत्र है, वैशेषिक दर्शन कौशिकी है, न्यायशास्त्र शोणनद है, इन के अतिरिक्त असंख्य तन्त्रादि

शास्त्र समस्त उदार झरने और नदियाँ हैं। ये सब मतभेदों को त्याग कर बङ्ग देश में एक हो जाते हैं। अहो! यह उत्तरल तरङ्गवाली विद्वानों की प्रमोद तरङ्गिणी आप में ही जाकर विश्राम लेती है। गङ्गा-सागर सङ्गम में पारस्परिक भेद नहीं रहता। अन्तिम गति सब की एक है। सब शास्त्रों से लक्ष्य आप ही हैं।

स्फीतं तस्य यशो दिशो धवलय,-त्यापूरयत्यम्बरं,
व्याप्नोत्यम्बुनिधीन् गिरीन् कलयते, पातालमालोकते।
लोकालोकमलङ्करोति कवली,-कर्तुं विधुं धावति,
यस्यान्त र्मधुप स्तवांङ्घ्रिकमले, गोरक्ष! बद्धस्पृहः॥७१॥

हे गोरक्ष! हे कीर्तिनाथ!! जिस का अन्तःकरण रूपी मधुप आप के चरणारविन्द के मकरन्द का लोभी है; उस का उज्ज्वल यश दिशाओं को धवलित कर देता है, अम्बरतल को परिपूर्ण कर देता है, द्वीपों को समुद्रों के साथ व्याप्त कर देता है, सर्वत्र गिरिशिखरों पर चढ़ता है, पाताल का आलोकन करता है, ब्रह्माण्ड की सीमा लोकालोक पर्वत को अलङ्कृत करता है और चन्द्रमा को कवलित करने के लिए धावा करता है।

लभ्यन्ते दयिता भवन्ति तनया, राज्यं सुखं भुज्यते,
मानो वर्धत एधते भवरसो, नश्यन्ति ते पश्यताम्।
संयोगोऽपि वियोगहेतुरिति ते, गोरक्षमुर्वीभुजो,
नाथ! त्वां शरणं गता बुभुजिरे, भूम्नां महिम्नां श्रियम्७२

हे नाथ! हे शरणागतवत्सल!! मनोवृत्तानुसारिणी दयिता मिलती हैं, कुलदीपक पुत्ररत्न उत्पन्न होते हैं, सुख पूर्वक राज्य का उपभोग किया

जाता है, सर्वत्र मानोन्नति होती है और शनैः शनैः सांसारिक विषयरस में आसक्ति बढ़ती है। किन्तु अल्प समय में देखते ही देखते सारा नाटक समाप्त हो जाता है। अन्त में संयोग भी वियोग का हेतु है। समस्त प्रपञ्च दुःख का कारण है'। इस प्रकार विरक्त होकर राजा लोग अनाथों के नाथ आप के शरण गये। जिस से उन्होंने भूमानन्दलक्ष्मी के शाश्वत आनन्द को प्राप्त किया।

कण्ठे तिष्ठति भारती दृशि रमा, चन्द्रो मुखे वासवो,
बाहौ वक्षसि मेरुरग्निरखिले,ष्वङ्गेष्वनङ्गस्तथा।
हस्ते भूवलयं बले मरुदिनो,भासि क्रमे वामनो,
गोरक्ष ! प्रणतार्तिहारिणि नृणां, त्वय्याश्रिते मानसम् ॥७३॥

हे आर्तबन्धो ! हे प्रणतपालक !! जिनके मानस भवन में जाकर आप विराजमान हो जाते हैं; उनके कण्ठ में सरस्वती, दृष्टि में लक्ष्मी, मुख में सुधांशु चन्द्र, बाहु में वज्रधर इन्द्र, वक्षस्थल में मेरु शैल, सर्वाङ्ग में तेजस्वी अग्नि तथा सौन्दर्य देव मदन, हस्त में भूमिवलय, बल में वायु, द्युति में भानु और विक्रम में त्रिविक्रम वामन निवास करते हैं। आपका चिन्तन सर्वमङ्गलों का मूल है।

शूली शूलधरो हली हलधरः, काली करालासिका,
चक्री चक्रधरो नखी नरहरिः, पाशी च पाशायुधः।
वज्री वज्रधरो धनुःशरधरो, रामो गुहः शक्तिमां-,
स्त्वद्भक्तं रणदीक्षितं त्वदनुगा, गोरक्ष ! रक्षन्ति ते॥७४॥

हे गोरक्ष ! हे भक्तरक्षक !! त्रिशूलधारी शूली, हलधर बलराम, विकराल तलवारधारिणी कालिका, सुदर्शन चक्रधारी चक्री, नखाङ्कुशधारी

नरसिंह, पाशधारी वरुण, वज्रधारी पुरन्दर, धनुर्बाणधारी रामचन्द्र और शक्तिधारी देवसेनापति कार्तिकेय आपके अनुगामी होकर युद्धयज्ञ में दीक्षित आपके भक्त की रक्षा करते हैं।

राहु र्बाहुबलं बुधो बुधधियं, धीरो गुरुर्गौरवं,
केतु र्नेतुरिलां रुचिं हिमरुचिः, प्रौढप्रतापं रविः।
शौर्यं शूरसुतो नयं भृगुसुतः, सन्मङ्गलं मङ्गल-,
स्त्वत्पादग्रहिणो ग्रहाः क्षितिभृतो, गोरक्ष ! रक्षन्ति ते ॥७५॥

हे नाथ ! हे गोरक्ष !! हेदेवदेव !!! आपके चरणों का ग्रहण करने वाले नेता नरपति के बाहुबल की रक्षा राहु, पाण्डित्यपूर्ण देवबुद्धि की रक्षा बुध, गौरव की रक्षा धीर बृहस्पति, भूमण्डल की रक्षा केतु, दिव्य कान्ति की रक्षा चन्द्रमा, प्रचण्ड प्रताप की रक्षा प्रभाकर, शौर्य की रक्षा सूर्यपुत्र, नीति की रक्षा शुक्र तथा मङ्गल की रक्षा मङ्गल करता है। आप की अनुकूलता से नवग्रह अनुकूल होते हैं।

वप्पेनापचिता श्रिता नृपकुलै, र्भूपप्रतापार्चिता,
राजस्थानकृतस्थितिः क्षितिभृता, मानेन या मानिता।
नेपालावनि-नायकेन पृथिवी-,नारायणेनाञ्चिता,
ध्याता मौलिधृता करोतु कुशलं, गोरक्ष ! ते पादुका ॥७६॥

हे गोरक्ष ! हे कल्याणमय !! जिसने राजस्थान की स्थिति की है, वप्पा रावल ने जिसकी पूजा की, भूपति प्रतापसिंह ने जिसकी अर्चना की, महीपति मानसिंह ने जिसका मान किया, नेपालावनि के नायक पृथ्वी नारायण ने जिसकी सेवा की, समस्त नृपकुल जिसका आश्रय लेते हैं, सदैव

ध्यान करते हैं और जिसे मुकुट में धारण करते हैं। वह आपकी चरण पादुका सबका कुशल करे।

इन्द्राद्या गुरुणाऽसुरा उशनसा, राम श्च वाल्मीकिना,
सत्कीर्त्या प्रथिता युधिष्ठिरमुखा, व्यासेन ते वर्णिताः।
भूपा विक्रमभोजभर्तृहरयः, श्रीकालिदासादिभि-,
र्गोरक्ष ! त्वदुदीक्षणात् पृथुरभू, च्छ्रीपृथ्विनारायणः ॥७७॥

उज्ज्वल कीर्तिशाली इन्द्रादियों का सुराचार्य ने, बलि आदियों का शुक्राचार्य ने, राम भद्रादियों का वाल्मीकि ने, युधिष्ठिरादियों का व्यास ने तथा भर्तृहरि-विक्रम भोजादियों का वर्णन कालिदासादियों ने किया है। किन्तु हे नाथ ! हे गोरक्ष !! आपके कृपाकटाक्ष मात्र से पृथ्वीनारायण पृथु हो गया।

गोरक्षाचल-कन्दरोदर-हरिः, श्रीपृथ्विनारायणो,
नेपालावनिपालभालतिलको,न्मृष्टौ विशिष्टोद्भटः।
त्वन्नामाङ्कितमुद्रया करगया, व्यामुद्रितोर्वीतलो,
गोरक्षाचलतामगादचलया,लिङ्ग्योरसि स्थापितः ॥७८॥

हे शिव ! हे गोरक्ष !! गोरक्षाचल की कन्दरा में निवास करने वाला केसरी तथा नेपाल के भूपालों के भालपट्ट से तिलक को पोंछने में विशिष्ट भट, आप के नाम से अङ्कित मुद्रा के द्वारा आसमुद्र पृथ्वीतल को मुद्रित करने वाला और समस्त सामन्तों से उसी मुद्रा का कर लेने वाला गिरिराज चक्र चूडामणि पृथ्वीनारायण अचला पृथ्वी ने स्वयं आलिङ्गन कर जिसे अपने वक्षस्थल में स्थापित किया था सर्वदा के लिए अचल हो गया।

श्रीपृथ्वीपतिभूपतिप्रतिनिधिः; श्रीपृथ्विनारायणो,
यच्चक्रे रिपु-चक्रमक्रम-गतं, गोरक्षदत्तासिना।

खण्डं खण्डमखण्डमण्डलभुवो, भर्ता मनःकामना-,
कालीलालितसम्पदूर्जितयशा, गोरक्ष! सा ते कृपा ॥७९॥

हे अमोघशक्ते ! हे राजन्यगुरो !! हंसवंशावतंस भूपति पृथ्वीपति के वंशधरों के प्रतिनिधि पृथ्वीनारायण ने आपके दिये हुए 'गोरक्षदत्त' नामक खड्ग से क्रमभङ्ग करने वाले शत्रुवों के रुण्डमुण्डों से रणाङ्गण को आच्छन्न कर दिया, उसके प्रभाव से सप्ताङ्ग राष्ट्र की रक्षा की, अखण्ड भूमण्डल का शासन किया एवं पुत्रवत्प्रजा का पालन किया। काली और मनःकामना ने जिसकी कामनाओं को पूर्ण कर त्रैलोक्य में यश फैला दिया। हे नाथ ! वह आपकी ही कृपा का फल है आपकी सेवा का फल है और आपके असीम वात्सल्य का फल है।

आशाः प्रोज्ज्वलयं स्तमः कवलयन्, द्विट्कैरवं मीलयन्,
रागं कन्दलयन् कुलं धवलयन्, पद्मालिमुन्मीलयन्।
अर्घ्याण्याकलयन् करान्छिथिलयन्, हृष्टाः प्रजाःपालयन्,
गोरक्षादुदितो दिवाकर इव, श्रीपृथ्विनारायणः ॥ ८० ॥

दिशाओं को उज्ज्वल करते हुए, अन्धकार को कवलित करते हुए, कुमुदों को कुण्ठित करते हुए, अरुण कान्ति को विस्तीर्ण करते हुए, समस्त कुल शैलों के साथ धराधाम को धवलित करते हुए, कमलों को प्रफुल्ल करते हुए, सन्ध्यावन्दन के समय दिये गये अर्घ्यों को ग्रहण करते हुए, कोमल किरणों को सर्वत्र विस्तृत करते हुए तथा दर्शनमात्र से प्रसन्न हुई प्रजा का पालन करते हुए पृथ्वी की रक्षा करने वाले उदयाचल से उदित हुए दिवाकर के समान —

समस्त याचकों की आशाओं को पूर्ण करते हुए, तमोगुण से होनेवाले अज्ञान के अन्धकार को कवलित करते हुए, शत्रुओं का नाश करते हुए,

राजभक्ति को उत्पन्न करते हुए, उज्ज्वल कीर्ति से कुल को प्रसिद्ध करते हुए, अतुलित लक्ष्मी का मुक्तहस्त से दान करते हुए, विजित राजाओं से उपहार ग्रहण करते हुए, प्रजा से भूमि का अत्यल्प कर लेते हुए एवं सब प्रकार प्रसन्न प्रजा का वात्सल्य से पालन पोषण करते हुए पृथ्वी-नारायण का गोरक्षनाथ से उदय हुआ।

रामोऽसौ प्रकृतौ भुवीह भरतः, सामुद्रिके लक्ष्मणः,
शत्रुघ्नः समरे नलः शुचिकुले, भीष्मः प्रतिज्ञाद्विषोः।
पाण्डुः कीर्तितनौ रघुश्च विजये, भीमश्च दुश्शासने,
गोरक्ष ! त्वदभून्महीपतिमयः, श्रीपृथ्विनारायणः ॥८१॥

हे गोरक्ष ! हे भक्तचिन्तामणे !! त्रैलोक्य वीर पृथ्वीनारायण आपकी कृपा दृष्टि से सब प्रकार अनुरञ्जन करने के कारण प्रजा के विषय में रामचन्द्र, सम्यक् भरण पोषण करने से भूमि के लिए भरत, समस्त चक्रवर्ति लक्षणसम्पन्न होने से सामुद्रिक शास्त्र में लक्ष्मण, शत्रुओं का हनन करने से समराङ्गण में शत्रुघ्न, आचार शुद्ध कुल के विषय में नल और अनल, सत्यसंकल्प तथा अत्यन्त भीषण होनें से प्रतिज्ञा और द्वेषियों के लिए भीष्म, निष्कलङ्कचरित्र होनें से कीर्तिमूर्ति में पाण्डु, आशु विजयी होनें से दिग्विजय में रघु और भयङ्कर दण्डदाता होनें से दुश्शासन (दुष्ट शासकों) के लिए भीमसेन था एवं प्रकार से पृथ्वीनाथ पृथ्वीनारायण महीपतिमय था।

मालिन्यं गगने जडत्वमुदके, स्थौल्य ञ्च दन्तावले,
मौर्क्यं चित्रपटं गतेषु कटुता, निम्बे रजो वर्त्मसु।
चाञ्चल्यं कदलीदले परुषता, पाषाणपट्टे स्थिता,
नाथ! त्वत्पदभाजि राजनि जने, नो पृथ्विनारायणे ॥८२

हे नाथ ! हे गोरक्ष !! हेनिरञ्जन !!! आप के चरणों के उपासक तथा आप के चरण कलमों को मौलि में धारण करने वाले राणा प्रताप के वंशधर प्रचण्डप्रतापी महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण के राष्ट्र में मलिनता केवल गगन में थी प्रजा के मन में नहीं, जडता केवल जल में थी बुद्धि में नहीं, स्थूलता केवल हस्तियों में थी उद्योगी होनें से शरीर में तथा मति में नहीं, मूकता केवल चित्रों में थी वाणी में नहीं, कटुता केवल निम्ब में थी स्वभाव में नहीं, रज धूली केवल मार्गों में थी हृदय में रजोगुण नहीं था, चञ्चलता केवल कदलीदलों में थी मन में नहीं और कठोरता केवल शिला में थी चित्त में नहीं। रामचन्द्र के शासन काल में प्रजा को जो सुख समृद्धि थी वही पृथ्वीनारायण के शासन काल में थी और वह सब आप की ही अनुकम्पा थी।

'रेरे काल ! करालभालभृकुटी, दन्तैरलं दर्शितै,
रेरे काम ! न वाम ! धामनि पुनः, शैवे पदं धास्यसि ? ।
रे संसार ! कुसार ! नारकनिभै, र्भोगैः कृतं, वादिनो,
गोरक्ष ! त्वदुपासनामृतभुजो, जाता भुजोर्वीभुजः॥८३।

हे प्रथमनाथ ! हे मन्मथप्रमाथिन् !! आप के चरणों की उपासना रूपिणी सुधा को पीकर अजर अमर मृत्युञ्जय पद को प्राप्त हुए अपने भुजबल से पृथ्वी का पालन करने वाले प्रतापी राजा लोग—'अरे ! काल !! विकराल भृकुटी दिखाना व्यर्थ है, तीक्ष्ण दंष्ट्रायें मत दिखावो, तुम्हारी दाल न गलेगी; अये ! वामाचारी काम !! क्या तुम स्मरारि के भालानल की ज्वालाओं को भूल गये ? क्या फिर से उसी शैव तेज में पतङ्ग होंना चाहते हो ? अरे ! निस्सार संसार !! रौरव तुल्य इन विषय भोगों को अपने पास रक्खो अब हमें इन की आवश्यकता नहीं'। इस प्रकार कालादियों को तृण तुल्य जान कर फटकारने वाले हो गये।

कैलासे निलयं कलाधरकलां, मौलौ समं गंगया,
प्रालेयाचलजामथाङ्कनिलयां, स्फीताट्टहासं मुखे ।
कृत्वाप्युन्मनसौ चतुर्मुखहरी, गोरक्ष ! ते तेजसा,
तप्तौ सप्तसमुद्रमध्यनिलयौ, पद्मे च पद्माहृदि ।।८४।।

हे मृत्युञ्जय ! हेज्योतिर्मय !! आपके तेज को शान्त करने के विचार से चतुर्मुख तथा चतुर्भुज ने मिलकर हिमाच्छादित स्फटिकाचल कैलास के शिखर पर आप का आवासभवन किया, हिमांशु कलानाथ की अमृत कला को भाललोचन के समीप जटामुकुट में मणि के स्थान पर जड़ दिया, सर्वाङ्गप्लाविनी तुषारशिशिरा सुरसरिता को मौलि प्रदेश में स्थापित किया, शैलराज हिमालय की पुत्री को आप के वामाङ्क में प्रतिष्ठित कर दिया और मुख में अट्टहास को रख दिया । किन्तु— 'भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः !' इतने पर भी उन्हें शान्ति न मिली। प्रत्युत आप का प्रचण्ड प्रताप बढ़ता गया । आप के तेज से सन्तप्त और उन्मनस्क होकर अगत्या सप्त सागरों के मध्य एक पद्म दूसरा पद्मा के हृदय में जा छिपा ।

सत्यं ज्ञानमनन्तमव्ययमजं, ब्रह्माद्वयं निष्कलं,
लीलोन्मीलितलोचनोद्गतजगज्जालं लसत्कुण्डलम् ।
बालेन्दोः कलया सुधाधवलया, मौलिस्थयाऽऽलोकितं,
मायानाथमनाथनाथमनिशं, गोरक्षनाथं स्तुमः ।।८५।।

सत्य-ज्ञान-अनन्त-अव्यय-अज अद्वितीय निष्कल ब्रह्म स्वरूप, लीला से उन्मीलित लोचनाञ्चल से समस्त जगज्जाल को फैलानेवाले, मनोहर कुण्डलों से मण्डित, मौलिस्थित बालचन्द्र की सुधाधवल कला से आलो-

कित माया के नाथ और अनाथों के नाथ श्रीगोरक्षनाथ की हम निरन्तर स्तुति करते हैं।

गङ्गाशेखर ! चन्द्रशेखर ! गुरो !, गोरक्ष ! गोवाहन !,
गोविन्दार्चित ! गोपगोपनपटो !, गोरक्षगोपावन !
गोभिर्गम्य ! गणेश ! गोकुलगते !, गर्गादिगीतस्तुते !,
गीर्वाणस्तुत ! गीष्पतिस्तुत ! गिरा,ऽगम्यागमाज्ञाव गाम् ॥८६॥

हे गङ्गाशेखर ! त्रैलोक्यपावनी भागीरथी आप के मस्तक का उज्ज्वल मुकुट हैं, हे चन्द्रशेखर ! निष्कलङ्क चन्द्रकला आपके मुकुट में मणि है, हे त्रिभुवनगुरो ! आप समग्र गुरुजनों के भी गुरु हैं हे गोरक्ष ! आप समस्त गौवों की रक्षा करने वाले हैं, हे गोवाहन ! चतुष्पाद वृषभ-रूपी धर्म आप का वाहन है, हे गोविन्दार्चित ! गोविन्द ने आप की अनेक बार नेत्रकमल आदि से अर्च्चना की है और आप ने प्रसन्न होकर सुदर्शन चक्रादि प्रदान किया है, हे गोप-गोपनपटो ! आप ऋषि-मुनि-राजा-विद्वान् आदि गोपों के पालन में पटु हैं।

हे गोरक्षगोपावन ! आप अपने गोरक्ष-राष्ट्र नेपाल के भूपालों का सब प्रकार पालन करते हैं और गोरक्षप्रदेश को पावन करते हैं, हे गोभिर्गम्य ! श्रुतिस्मृति आदि शास्त्रों से आप का ज्ञान होता है तथा उप-लब्धि होती है, हे गणेश ! आप आदित्यादि गणों के और प्रमथ विनायक आदि गणों के नायक हैं, हे गोकुलगते ! आप सब प्रकार की आपत्तियों से गोकुल की रक्षा करते हैं, प्रलय काल में मत्स्य रूप से वेदकुल का उद्धार करते हैं, हे गर्गादिगीतस्तुते ! कल्पद्रुमतन्त्रादि शास्त्रों में गर्गादि ऋषि-मुनियों ने आप की स्तुकि गाई है, हे गीर्वाणस्तुत ! समस्त देववृन्द आप की स्तुति करता है, हे गीष्पतिस्तुत ! बृहस्पति प्रभृति विद्वान् लोग

आप का स्तोत्र पाठ करते हैं, हे गिराऽगम्य ! मन के साथ वाणी भी आप का अन्वेषण कर थक जाती है, हे आगमाज्ञ ! समस्त आगम-निगम आप की आज्ञा है जिसका पालन करने से धर्म-अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है ; हे नाथ ! हे गोरक्ष !! गोरूपिणी पृथ्वी की रक्षा करो ।

यत्पृष्ठे कमठोऽखिलं वहति य, द्धत्ते धरां नागराड्,
यत्पृथ्वी स्थितये स्थिता प्रथयते, नाथः स्थितिं पाथसाम् ।
यन्नाचामति सिन्धुमौर्व उदयः, पत्युस्त्विषां यत्क्रमाद्,
यद्वातोऽतति भान्ति भानि गगने, गोरक्ष ! तत्त्वद्भयात् ॥८७॥

कमठराज अपने दृढ़पृष्ठ में जो चतुर्दश भुवनों को धारण करता है, नागराज अपने फणा मण्डल में जो सप्तद्वीपवती पृथ्वी को धारण करता है, सर्वंसहा पृथ्वी जो समस्त चराचर प्राणियों की स्थिति के लिए निश्चल होकर स्थित है, अगाध समुद्र अपने उत्तुङ्ग तरङ्गों से जो वेला का उल्लङ्घन नहीं करता, विकराल ज्वालामाली वडवानल जो जलराशि का आचमन नहीं करता, प्रभापति दिवाकर का उदय जो नियत समय पर होता है, जगत्प्राण वायु जो अनवरत गति से चलता रहता है एवं निरालम्ब अन्तरिक्ष में जो ग्रहनक्षत्रगण अपनी २ वीथी का अतिक्रमण न करते हुए निरन्तर भ्रमण कर रहे हैं, यह सब आप के भय का फल है । 'भीषास्माद्वातः पवते' ।

विप्राग्नो वदनं भुजौ क्षितिभुजो, वैश्या स्तवोरुद्वयं,
भूशूद्रौ चरणौ मनो हिमकर, श्चण्डातपश्चक्षुषी ।
श्रौत्रे वायुदिशो जगन्त्यवयवा, नाभि र्नभो द्यौः शिरः,
श्रुत्यैवं प्रथितोऽपि योगिमनसा, गोरक्ष! मेयोऽद्भुतः ॥८८॥

हे गोरक्ष ! हे विश्वम्भर !! हे विश्वरूप !!! ब्राह्मण और अग्नि आप का मुख है, क्षत्रिय आप के बाहुदण्ड हैं, वैश्य आपके दोनों ऊरु हैं, भूमि और शूद्र आप के चरण हैं, चन्द्रमा आप का मन है, सूर्य आपके चक्षु हैं, वायु और दिशायें आपके श्रोत्र हैं, नभोमण्डल आप की नाभि है, द्युलोक आप का उत्तमाङ्ग है एवं शेषलोक आप के शेष अवयव हैं। श्रुतियाँ आपके विराट रूप का इस प्रकार वर्णन करती हैं; तदपि योगिजन अपने अणु मन से आप का मान कर लेते हैं। आप की माया अद्भुत है।

एका स्तौति सहस्रशीर्षमपरा, शब्दादिशून्यं श्रुतिः,
सर्वं खल्विति नेति नेति वचनैरन्ये मिथो जल्पतः।
आनन्दाम्बुनिधौ जगल्लहरिका, मन्या विभो ! मन्यते,
व्यावृत्ता मनसा समं तदपि ता, गोरक्ष ! ते तत्त्वतः ॥८९॥

हे गोरक्ष ! हे विभो !! हे सदाशिव !!! एक श्रुति आप की सहस्रशीर्षा पुरुषः कह कर स्तुति करती है, दूसरी अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं कह कर प्रतिपादन करती है; एक सर्वं खल्विदं ब्रह्म कहती है, दूसरी नेति नेति कह कर निषेध करती है; अन्य श्रुति सच्चिदानन्दसिन्धु में ब्रह्माण्ड के तरङ्ग उठते हैं ऐसा कहती है। तदपि समस्त श्रुतियाँ मन के साथ आप के तत्त्व का परिशीलन करते २ परिश्रान्त होकर निवृत्त हो जाती हैं।

कृष्णं सत्यवतीसुतः खरिपुं, वल्मीकजन्मा मुनिः,
कैलाशं दशकन्धरो भुवमही, रत्नाकरं मन्दरः।
आकाशं श्वसनो मृकण्डुतनयः, कल्पं सुमेरुं रवि,
र्जानीते ननु नाथ ! कोऽपि भवतो, भूम्नो महिम्नोऽवधिम् ॥९०॥

हेनाथ ! हेगोरक्ष !! हे अनन्त !!! कृष्णचन्द्र को सत्यवतीपुत्र वेदव्यास, रामचन्द्र को वल्मीकपुत्र आदिकवि, कैलाश को लङ्कानाथ दशानन,

सप्तद्वीपा वसुमती को नागनाथ शेष, रत्नाकर समुद्र को मन्दराचल, आकाश को सदागति वायु, प्रलय काल के दृश्य को मार्कण्डेय मुनि और सुमेरु पर्वत को सप्ताश्व सूर्य जानता है। किन्तु आप की विशाल महिमा की अवधि को ब्रह्मा भी नहीं जानता; औरों की तो बात ही क्या ?

दिग्वासाः परमेश्वरः स्मरहरः, शैलात्मजादक्षिणः,
स्थाणु र्मोक्षफलो नटः सुरगुरुः, संहारकः शङ्करः ।
योगी भोगिवृतः शिवः प्रमथप, श्चैकोऽष्टमूर्ति. र्हरो,
गोरक्षोऽसि विरुद्धतापि भवतो, भूत्यै भुवो भ्राजते ॥९१॥

हेदेव ! हेमायानाथ !! आप दिगम्बर होते हुए परमेश्वर हैं, मदनारि होते हुए अर्द्धनारी हैं, स्थाणु होते हुए मुक्तिफल देते हैं, महानट होते हुए सुरगुरु हैं, संहारकारी होते हुए कल्याणकारी हैं, योगी होते हुए भोगियों (सर्पों) से परिवृत हैं, पवित्र शिव होते हुए बीभत्सकाय-चरित्र प्रमथगणों के नायक हैं, एक होते हुए अष्टमूर्ति हैं, एवं हर होते हुए गोरक्ष हैं। हे अघटितघटनापटो ! आपकी यह विरुद्धता भी भूमि की समृद्धि के लिए शोभायमान है।

विकारोऽपिश्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः !,

दिक्पाला दितिजार्दिताः क्षितिभरा, क्रान्ताश्च कूर्मादयो,
ग्रस्तौ सोमरवी सदैव तमसा, ग्रावा तु चिन्तामणिः ।
वेधाः पङ्कजसम्भवो मधुरिपु, र्धत्ते भृगोर्लाञ्छन,
गौरेषा किल कामधेनुरुपमा, केनास्तु गोरक्ष ! ते ॥९२॥

हेनाथ ! हेत्र्यम्बक !! हेअनुपम !!! दिक्पाल दैत्यों से परास्त हैं, कूर्मराजादि पृथ्वी के भार से आक्रान्त हैं, चन्द्र तथा सूर्य को राहु ग्रस्त

करता है, चिन्तामणि शिलाखण्ड है, ब्रह्मा पङ्कजपुत्र हैं, विष्णु भृगुलाञ्छन को धारण करते हैं एवं कामधेनु वराकी गौ है। त्रैलोक्य में तुल्य उपमान नहीं मिलता, आप की उपमा किस से दें? हेदेव! आप सर्वथा अनुपम हैं।

पृथ्व्यां पञ्चगुणश्चतुर्विधगुणः, स्तोये त्रिधाऽग्नौ गुणो,
वायौ युग्मगुणोऽम्बरेऽद्वयगुणो, ब्रह्मात्मना निर्गुणः।
निर्लेपो निरुपाधिको निरवधि, र्निश्शेषदोषोज्झितो,
गोरक्ष! स्वमहिम्नि शश्वदचलो, ज्योतिर्मयो द्योतसे॥९३॥

हेगोरक्ष! हेसदाशिव!! आप पृथ्वी में शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गंधोंसे पंचगुण हैं, जलमें शब्द-स्पर्श-रूप और रसोंसे चतुर्गुण हैं, तेज में शब्द-स्पर्श-रूपों से त्रिगुण हैं, वायु में शब्द स्पर्शों से द्विगुण हैं, आकाश में शब्द से एकगुण हैं और ब्रह्मस्वरूप से निर्गुण हैं, निर्लेप हैं, निरुपाधि हैं, निस्सीम हैं, निश्शेषदोषों से रहित हैं, अपनी अनन्त महिमा में निरन्तर अचल ज्योतिः स्वरूप से देदीप्यमान हैं।

अष्टावक्रविदेहयो र्भृगुपयः-, पत्यो र्मिथः कृष्णयो-,
ब्रह्मन्! रामवशिष्ठयोः पतगयो, र्वाचक्नवीयाज्ञयोः।
भास्वद्भूनचिकेतसोः शुकपरी,-क्षिद्राजयो र्भायुजोः,
संवादेषु च नैमिषे च गरिमा, गोरक्ष! ते गीयते॥९४॥

हेआनन्दसिन्धो! हेब्रह्मन्!! हेगोरक्ष!!! महर्षि अष्टावक्र तथा विदेहराज जनक के संवाद अष्टावक्रगीता में, ब्रह्मर्षि भृगु तथा पश्चिम के दिक्पाल वरुण के संवाद तैत्तिरीयोपनिषद् में, नर-नारायण के अवतार कृष्ण तथा अर्जुन के संवाद भगवद्गीता में, मर्यादापुरुषोत्तम राम तथा

ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ के संवाद योगवाशिष्ठ में, चिरञ्जीवी काकभुसुण्ड तथा कश्यपपुत्र छन्दोमय गरुड के अनेक पौराणिक संवादों में, वचक्नु मुनि की पुत्री ब्रह्मवादिनी गार्गी तथा महायोगी याज्ञवल्क्य के संवाद बृहदारण्यकोपनिषद् में, त्रैलोक्यदीपक भास्कर के पुत्र धर्मराज तथा ब्रह्मविद्यानुरागी मुनिकुमार नचिकेता के संवाद कठोपनिषद् में, बालयोगी शुकदेव तथा कैवल्यकांक्षी महाराज परीक्षित् के संवाद भागवत में, नैमिषारण्यवासी महापौराणिक सूत-सौनकादि मुनियों के संवाद अष्टादश पुराणों में एवं अन्य सभी संवादों में आप के ही गौरव का गान है।

नाथ ! त्वद्यशसा दिशो धवलिता, ज्योतिर्गणा द्योतिताः,
दुग्धाब्धिः परिपूरितः सुरकरी, स्नातः सुधा शोधिता।
कैलासोऽप्युपलिप्त एष भुवनं, व्याप्यावशिष्टन्तु तत्,
पिण्डीभूतमखण्डमण्डलमयं, शीतांशुरुज्जृम्भते ॥९५॥

हेनाथ ! हेगोरक्ष !! आप के यश से दशों दिशायें धवलित हो गईं, ज्योतिर्गण द्योतित हो गये, क्षीर सागर परिपूर्ण हो गया, ऐरावत गज ने स्नान कर लिया, सुधा भी संशोधित हो गई, कैलास भी उपलिप्त हो गया; एवं समस्त भुवनों को व्याप्त कर अवशिष्ट आप का यश पिण्डीभूत यह अखण्डमण्डल वाला चन्द्रमा होकर शोभायमान है।

पाताले भुजगीगणा भुवि नराः, शैलेषु सिद्धाङ्गनाः,
गन्धर्वाः सुरसुन्दरीसहचरा, हृन्नन्दने नन्दने।
वैकुण्ठे स च नारदो विधिपुरे, सा शारदा सर्वदा,
गोरक्ष ! प्रकटीभवत्कलगिरो, गायन्ति कीर्तिं तव ॥९६॥

हेशिव ! हेगोरक्ष !! पाताल लोक में नाग-नागिनियाँ, भूर्लोक में नर-नारियाँ, हिमालय कैलाशादि शैलों में सिद्धाङ्गनायें, हृदय को आनन्द-

देने वाले नन्दनवन में अप्सराओं के साथ गन्धर्वगण, वैकुण्ठ में देवर्षि नारद तथा सत्यलोक में वाग्देवी सरस्वती सदैव प्रस्फुट कलकाकली से आप की कीर्ति को गाते रहते हैं।

गङ्गा निम्नगतिः सुधा विषसखी, सौदामिनी चञ्चला,
क्षीराब्धिः स जडाशयो द्विरसनः, शेषो भुजङ्गाधिपः।
कैलाशोऽप्युपलः पशुः सुरगजो, धत्ते कलङ्कं शशी,
कीर्तिं ते तुलयामि केन भुवने, गोरक्ष! निष्कल्मषाम्? ॥९७॥

हेगोरक्ष! हेत्र्यक्ष!! हेपुण्यकीर्ते!!! गङ्गा निम्नगति वाली है, सुधा हलाहल विष की सखी है, विद्युत् चञ्चल है, क्षीरसमुद्र जडायश है, शेषनाग एक तो द्विजिह्व है दूसरा भुजङ्गराज है, कैलाशाचल भी शिलामय है, सुरगज ऐरावत पशु है एवं चन्द्रमा कलङ्की है; त्रैलोक्य में विशुद्ध उपमान नहीं मिलता; आप की निष्कल्मष कीर्ति की तुलना किस से करें?।

क्षीरोदन्ति पयोधयः सुरगज,न्तीभा गिरन्त्यङ्गनाः,
कैलाशन्ति नगा हरन्ति विबुधा, गङ्गान्ति कूलङ्कषाः।
नन्दीयन्ति वृषा बलन्ति पुरुषाः, शेषन्ति चाशीविषाः,
नाथ! त्वद्यशसा सिते त्रिभुवने, हंसन्ति काकाः पिकाः॥९८॥

हेनाथ! हेयशोनाथ!! हेसदाशिव!!! आप के विशद यश से धवलित त्रिभुवन में सभी समुद्र क्षीरसमुद्र का आचरण करते हैं, सभी हस्ती इन्द्रहस्ती का आचरण करते हैं, सभी स्त्रियाँ शारदा का आचरण करती हैं, सभी पर्वत कैलाश पर्वत का आचरण करते हैं, सभी देवता आपका आचरण करते हैं, सभी नदियाँ गङ्गा का आचरण करती हैं,

सभी वृष आपके धर्मरूप नन्दिवृष का आचरण करते हैं, सभी पुरुष बलराम का आचरण करते हैं, सभी नाग शेषनाग का आचरण करते हैं, सभी काक और कोकिल हंस का आचरण करते हैं।

यल्लेखाय सहस्रबाहुमकरो,द्वक्तुं सहस्राननं,
द्रष्टुं चाऽपि सहस्रनेत्रमकरो,च्छ्रोतुं सहस्रश्रुतिम् ।
नेत्थं नाथ ! तथापि तत्त्वमखिलं, ब्रह्मावगन्तुंप्रभु-,
स्तत्त्वं तत्त्वमसि श्रुतिस्मृतिमतो, गोरक्ष ! तुभ्यं नमः ॥९९॥

हेनाथ ! हेगोरक्षदेव !! हेसच्चिदानन्द !!! चतुरानन ब्रह्मा ने जिस तत्त्व के लिखने के लिए हैहयराज सहस्रबाहु की सृष्टि की, प्रवचन के लिए नागराज सहस्रानन को उत्पन्न किया, देखने के लिए देवराज सहस्राक्ष को प्रस्तुत किया, और सुनने के लिए पृथुराज सहस्रश्रुति का प्रादुर्भाव किया। तथापि इदमित्थं करके जिसको नहीं जान पाया, आप वही तत्त्व हैं; श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ आपका प्रतिपादन करती हैं। हेनिरञ्जन! हेज्योतिःस्वरूप !! आपको नमस्कार है।

कैलाशाचलचारुशृङ्गरचिता, वेदी यदीयासनं,
शान्तं शङ्ख-शशाङ्क-कुन्द-कुमुद,-स्फीतश्रियालिङ्गितम् ।
बालार्कारुणकीर्णकोणकिरण-,ज्योतिर्जटामण्डितं,
तज्ज्योतिर्मयमैश्वरं वपुरिदं, गोरक्ष ! ते धीमहि ॥१००॥

हे शिव ! हे गोरक्ष !! हे ज्योतिःस्वरूप !!! कैलाश पर्वत के तुङ्ग और सुन्दर शिखर की वेदी पर विराजमान प्रशान्त और गम्भीर, शङ्ख, शशी, कुन्द तथा कुमुद के तुल्य उज्ज्वल कान्ति से देदीप्यमान बाल भास्कर के विस्तीर्ण कोण वाले अरुण किरणों के समान ज्योति वाली

जटाओं से मण्डित एवं ज्योतिर्मय आपके उस श्रुतिगीत और योगियों की ऋतम्भरा प्रज्ञा से अनुभूयमान सदाशिव स्वरूप का हम सदा ध्यान करते हैं ।

पुण्यश्लोकवतो गुरोस्त्रिजगतो, गोरक्षनाथेशितु-,
भक्त्याकृष्टधियः कवे नरहरे, र्गुर्व्या गिरोन्मीलितः ।
सच्छायः सुपदो मुदा सुमनसां, सङ्घैः सदा सेवितः,
कल्पः कल्पयितुं मनोरथफलं, कल्पावधिं कल्पताम् ॥१०१॥

योगिनरहरिनाथविरचितो

गोरक्षकल्पद्रुमः

संपूर्णः

पुण्यश्लोक त्रिभुवनगुरु सदाशिव भगवान् गोरक्षनाथ की भक्ति से आकृष्टबुद्धिवाले कवि नरहरिनाथ योगी की वाणी से उद्भूत, सुन्दरछाया-वाला=सुन्दरकान्तिवाला, सज्जनों को आश्रय देनेवाला सुन्दर पदावलि से अलङ्कृत, प्रतिष्ठित मूलवाला=उत्तम पद को देनेवाला नाना प्रकार के वाङ्मयवैभव कुसुमों से सदैव मण्डित=सज्जन और सुरगणों से सदैव सेवित यह गोरक्षकल्पद्रुमस्तोत्र कल्पवृक्ष हो कर कल्पकल्पान्तरों तक भक्तिपूर्वक पठन-पाठन-श्रवण मनन करने वाले सहृदय जनों को मनोरथ के अनुकूल फल देने में समर्थ हो ।

अनुवादक—

सोमनाथयोगी

ॐ नमो गोरक्षदेवाय

॥ श्रीगोरक्षवसन्तस्तोत्रम् ॥

कलानाथकलाङ्काय, कुण्डलीकृतभोगिने ।
सप्ताश्वधाम्ने सप्ताय, नमोऽस्मै बालयोगिने ॥१॥

पातालमालवालं, पृथ्वी स्कन्धो दिशोऽभितः शाखाः ।
तारककोरकरम्यो, गोरक्षः कल्पवृक्षोऽव्यात् ॥२॥

वपुषि च यशसि च धवलं, बालमवालं तयोः स्तुवंस्तस्य ।
कथयति नरहरिनाथो, गाथां नाथाधिनाथस्य ॥३॥

क्षितिक्षितां मौलिकृतालया बुधैः,
समग्रसिद्धै र्नरकिन्नरोरगैः ।
विमृग्यमाणा भवसिन्धुसेतवो,
जयन्ति गोरक्षपदाब्जरेणवः ॥४॥

पद्मोदरे गिरिरत श्चतुराननोऽसौ,
भोगीन्द्रभोगशयनो रमया मुरारिः ।
गौर्या हरो हिमगिरौ कुरुते निवासं,
गोरक्ष ! रक्षसि कथं व्रतमात्मनीनम् ? ॥५॥

नक्षत्रपोक्षितनताक्षतपद्मलक्ष्मन् !
यक्षेशदक्ष ! कृतदक्षमखक्षयोग्र ! ।

वक्षोजविक्षतिकृतिक्षाम ! मोक्षलक्ष्म्या,
गोरक्ष ! रक्ष विषमाक्ष ! यमक्षयान्नः ॥६॥

ऋक्षाधिपेक्षणविलक्षणलक्षणाय,
मोक्षैकलक्षजनरक्षणसक्षणाय ।
रक्षःक्षतक्षितितलप्रथितक्षणाय,
गोरक्ष ! ते क्षितिभृतां पतये नताः स्मः ॥७॥

त्वं नाथसे मदननाथितमात्मनाथ !,
क्ष्मानाथ ! नाथरहितार्त्तमनाथनाथ ! ।
नाथं न नाथयसि नाथितसर्वनाथ !,
गोरक्षनाथ ! भुवि नाथ भवोऽस्तु नाथः ॥८॥

योगीन्द्रवन्द्य ! कृतयोग ! वियोगभाजां,
योगैकगम्य ! भवयोगवियोगयोग्य ! ।
योगेश्वर ! स्मरवियोगकृताभियोग !
योगीश ! योगविशदेन हृदा स्मृतोऽव ॥९॥

गोपालपाल ! गुरुसद्व्रतपालपाल !,
भूपालपाल ! भुवि भूसुरपालपाल ! ।
नेपालपाल ! नगजानयपालपाल !
दिक्पालपाल ! जय संसृतिपालपाल ! ॥१०॥

गात्रत्रयी सुरनरोरगभूत्रयीयं,
नेत्रत्रयी रविशशिज्वलनत्रयीयम् ।

वेदत्रयी वरद ! दे वचनत्रयीयं,
देवत्रयी त्रिगुणनाथ ! गुणत्रयीयम् ॥११॥
आगण्डमण्डललसन्मणिकुण्डलाभ्या-
मामीलिताद्वियुगपिङ्गजटाघटाभ्याम् ।
सिद्धासनस्थकृतकुण्डलिनीप्रबोधो,
गोरक्ष ! बोधयसि भर्तृहरिं स्वयोगम् ॥१२॥
आलोलकुण्डलललामकपोलपालिं,
बालेन्दुशेखरमनङ्गविभङ्गदक्षम् ।
कर्पूरकुन्दकुमुदेन्दुसुधाभिरामं,
गोरक्षनाथमनिशं मनसा स्मरामः ॥१२॥
क्षीरोदधि हिमगिरिः शरदभ्रताराः,
सा शारदा सुरसरित्करका मरालाः ।
हारोत्करो हिमकरः करिराट् तुषारो,
गोरक्षकीर्तिवनिताहृदि हारमुक्ताः ॥१४॥
सर्वप्रजानयनबालचकोरचन्द्र !,
जाड्यान्धकारहरणैकमरीचिमालिन् ! ।
सद्भक्तमानससरोवरराजहंस !,
गोरक्ष ! ते पदसरोजरजो भजामः ॥१५॥
शेषो वृषो विषमनेत्र ! विषं विशाला.
माला नृमुण्डरचितापि चितारजोऽङ्के ।

गङ्गाकलाधरकलामलमौलिमौले !,
आकल्पकल्पनपटो ! नटराज ! भासि ॥१६॥
केदारदारवरहारविहारसार !,
संसार ! सारय न सारविचारचारु ।
गोपीन्दुभर्तृहरिपूर्णमुखा श्चपूर्णा,
गोरक्षमक्षयमुदीक्ष्य महीक्षितस्ते ॥१७॥
गङ्गोत्तमाङ्ग ! कृतभङ्ग ! मनोजभङ्गे -,
रुत्तुङ्गशृङ्गनिलयाङ्ग ! भुजङ्गमाङ्ग ! ।
मातङ्गतुङ्गमदभङ्ग ! शिवाङ्गसङ्ग !,
मां शृङ्गिपुङ्गवमितङ्गम ! पाहि सङ्गात् ॥१८॥
स्मरारे ! सुधाहारकर्पूरमूर्ते !,
तवोदारसञ्चारि गोरक्षनाथ ! ।
मनोमन्दिरे सुन्दरे चन्द्रमौले !,
स्मरामोऽभिरामांङ्घ्रियुग्मं विमुक्त्यै ।१९॥
शिक्षा याति लयं समं गुणिगणैः. प्राप्ता परीक्षा क्षयं,
दीक्षा क्वापि गता क्षतः श्रुतिपथा, भिक्षाऽप्यहो ! दुर्लभा ।
ईक्षा दीनजनेषु नास्ति महतां, धर्मे समीक्षा कुतः ?,
प्रेक्षा कुण्ठगतिः कलौ करुणया, गोरक्ष ! रक्षावनिम् ॥२०॥

इति श्रीनरहरिनाथयोगिकृतं
श्रीगोरक्षवसन्तस्तोत्रम्
सम्पूर्णम्

श्रीनाथाय नमो गुरवेच

(शब्दचित्रमयः)

।। श्रीनाथस्तोत्रराजः ।।

नमोऽहं कलये हंसो, हंसोऽहं कलयेऽन्वहम् ।
नमोऽहं कलये हंसो, हंसोऽहं कलयेऽन्वहम् ।।१।।

अनन्यमानसो हंसो, मानसं पदमाश्रितः ।
अनन्यमानसो हंसो, मानसं पदमाश्रितः ।।२।।

रक्ष मा दक्ष गोरक्ष ! क्षरगोक्षद मा क्षर ।
जयकाम महाराज, जराहा मम कायज ।।३।।

घनसारद नाथाय, यथा नाद रसा नघ ! ।
ते स्तुमो नरधामाहे, हेमाधार ! नमोऽस्तु ते ।।४।।

विभु संमत नादो वा, वादो ना तमसं भुवि ।
ते स्तुमो नयवादेशं, शं देवाय नमोऽस्तुते ।।५।।

नवपारद सायामा, मायासादर पावन ! ।
ते स्तुमो नवमीनार्या, र्यानामीव नमोऽस्तुते ।।६।।

वन जानि वशा वेशा, शावेशा वनिजा नव ।
कायिना नुत शं खेन, नखे शं तनु नायिका ॥७॥

किं न हीन जरं देवं, वंदे रंजन हीन किम् ? ।
दाससारस मा सेवा, वासे मा सरसा सदा ॥८॥

सवने जय देवेशा, शावेदे यजने वस ।
तारया जर वै देवे, वेदे वै रजया रता ॥९॥

भाशु भास जरा भासा, साभा राज सभा शुभा ।
सार राज तया भासा, साभा यात जरा रसा ॥१०॥

श्रीमानार्यकृतः समोऽप्युभयतः, श्रीस्तोत्रराजोऽधुना,
नाथानां मुदमावहन् विजयते, निर्णीतसारो रसः ।
पद्ये ,दक्षविचारितेऽपि जनय, न्नानन्दमन्यार्थदो,
बालानां शरणार्थिनां शरणदो, वर्वर्ति सर्वोपरि ॥११॥

शिवम्

स्वस्ति श्रीश्रेयः श्रेणयः श्रीमतां समुल्लसन्तु तराम् ।

इति श्रीराजस्थान शिखामणि योधपुराधिराजराजन्य
शिरोमणिमानसिंहदेवकृतः
श्रीनाथस्तोत्रराजः
सम्पूर्णः ।

श्रीनाथाय नमः

॥ गोरक्षनाथाष्टकम् ॥

(हंसचित्रम्)

योगीन्द्राक्षहितोपदेशविशदा देशार्थतत्त्वं शिरो,
ज्ञानं कर्म च दक्षिणोत्तरगता,वक्षोऽभ्यपक्षावसौ ।
आत्मा योगवरः स्वरूपविषया, पुच्छं प्रतिष्ठाचितो,
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः॥१॥

द्वैतं दक्षिणपक्ष एष विहितोऽद्वैतं विविच्योत्तरः,
पक्षो योगशिरो विशेषपरमाद्वैतं तदात्मा महान् ।
पुच्छं केवलभाव एव विदुषां, हृत्पद्मनीडं मह-,
न्माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथोविभुः ॥२॥

ऐन्द्री दिक्शुभपूर्वरूपमतुलं, पुच्छं प्रतीची दिशो-,
दीचीयाम्यदिशावतीव विपुलौ, दक्षौ हि पक्षौ हितौ ।
आत्मैवापदिशं दिशासु तरले, सूर्येन्दुबिम्बे दृशौ,
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।३।

श्रुत्यन्ते कथितं शिरो महदिदं, पक्षोऽयमत्रोत्तरः,
सोयंऽ दक्षिणपक्ष एव विपुलः, स्थूलोऽयमात्माचलः ।
स्वच्छं पुच्छमिवेदमेव भुवनं, नीडं सरूपाभिधं,
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ४

प्राणो दक्षिणपक्ष एष विततो,दानो भवत्युत्तरः,
पक्षो व्यानशिरो विशालहृदयं, मध्यं समानोऽपरः ।
वायुः पुच्छमतुच्छमेव भजतां, नीडं निकायो जडं,
माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नथो विभुः ।५।

भव्यं सत्यमृतं च पक्षयुगलं, वाणी शिरः प्राणिना-,
　　मात्माऽशेषविशेषदोषरहितः श्रद्धैव पुच्छं फलम् ।
सर्वं तुच्छमनुप्रविश्य सहसाऽ,तुच्छं पुरा व्याकृतं,
　　माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।६।
पश्यैतद्यजुरेव साङ्गमखिलं, नित्यं शिरो निर्मल-,
　　मृक्सामात्मकवेदयुग्मममतुलं, पक्षाद्वयं पक्षिणः ।
आत्मादेशपरा ऋगेव सफला,ऽथर्वैव पुच्छं परा.
　　माया यस्य जगत्त्रयं विजयते हंसः स नाथो विभुः ।७।
श्रुत्या जन्यमिदं प्रियं सितशिरो, मोदप्रमोदावहं,
　　पक्षावुत्तरदक्षिणावसुभृदा-,नन्दोऽयमात्मातुलः ।
पुच्छं ब्रह्म तदादिवाक्यगतया. वृत्त्योपलक्ष्यात्म त-,
　　न्माया यस्य जगत्त्रयं विजयते, हंसः स नाथो विभुः ।८।
　　मानेन मानेन समाश्रितानां,
　　　　मानं समानं मम नाथ ! भूयात् ।
　　मानेन मानेन समाश्रितानां,
　　　　मान समानं मम नाथ भूयात् ॥९॥
स्वस्ति श्रीश्रेयः श्रेणयः श्रीमतां समुल्लसन्तुतराम् ।

इति श्रीराजस्थानशेखरीभूतयोधपुराधिराज
मानसिंहदेवविरचितं तैत्तिरीयोपनिषदनुसारं
(हंसचित्रं)
श्रीगोरक्षनाथाष्टकं
सम्पूर्णम्

॥ श्रीगोरक्षवरस्तुतिः ॥

निर्जन्देवद्वार, विविदिषुमना धीरधिषणो,
दरीदेवागारो, पवनतटिनीभूशिखरिषु ।
निरालम्बं भ्राम्य, न्निजजनिधरित्रीपरिवृढं,
सदा ध्यायं ध्यायं, मुदितमनसाऽसौ ददृशिवान् ॥१॥

भगवान् गोरक्षनाथ के अनन्य भक्त गोरक्षसाम्राज्य के सार्वभौम और गोरक्षाचलतिलक महाराजा पृथ्वीनारायण के कुलपुरोहित पण्डित चक्रपाणि एक वार घर से विरक्त होकर मानों अपने भाग्यद्वार का अनुसन्धान करने निकले। प्रमुदित चित्तसे भगवान् गोरक्षनाथ के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए गिरिदरियों में, देवालयों में, वन तथा उपवनों में, पुण्यसलिला नदी तथा तीर्थों में, भूमण्डल नें एवं गिरिशिखरों में कतिपय समय निरालम्ब भ्रमण करने के अनन्तर, एक दिन अकस्मात् अपनी जन्मभूमि गोरक्षाचल के अधिदेव अयोनिशङ्कर गुरुगोरक्षनाथ जी ने अपने दिव्य दर्शन से कृतार्थ किया।

गुरुः श्रीगोरक्षो,ऽनवधिकरुणासागरसुधा-,
च्छटावर्षैस्तातं, विजनभुवि सिञ्चन् समगमत् ।
प्रदर्श्य स्वं रूपं, किमपि मनुमादिश्य रसना-,
तले सच्चित्तत्त्वं, किमपि परिलिख्यैनमवदीत् ॥२॥

असीम करुणासागर चराचरगुरु भगवान् गोरक्षनाथ सुधावृष्टिमय दृष्टि से अपने अनन्यशरण अतिप्रियभक्त चक्रपाणि को सींचते हुए विजन वन में प्रकट हुए और अपने यथार्थज्योतिर्मय दिव्य स्वरूप का दर्शन देकर समस्त वाङ्मय के मूलमन्त्र का उपदेश किया एवं चक्रपाणि के जिह्वाञ्चल पर कोई अलौकिक सच्चित्तत्व बीज को लिख कर कहने लगे ।

गिरां देवी बाला,ननकमलसद्मा भवतु ते,
धराधीशश्रेणी चरणतलपीठे लुठतु ते ।
भव त्वं पूर्णायु, र्जगति महिमा ते प्रसरतात्,
सुतांल्लब्ध्वा धीरान् , कुरु सुत ! धराचङ्क्रममिति ॥३॥

हेवत्स ! वाग्देवी सरस्वती सदैव तुम्हारे मुखकमल में निवास करे, नरेशमण्डली तुम्हारे चरणों में मस्तक झुकावे, तुम्हारी दीर्घायु हो,संसार में तुम्हारी महिमा का विस्तार हो, विद्वान् पुत्रों को उत्पन्न कर भूमण्डल का भ्रमण करना; हेपुत्र ! अभी तुम गृहस्थ धर्म का विधिवत्पालन करो । इतना कह कर मौन हो गये ।

ततः पूर्णानन्दा,मृतसरसि मग्नेन मनसा,
पिता मूर्ध्ना बद्धा,ञ्जलिपुटयुजा पादकमलम् ।
गुरो र्वारंवारं, निजनियतिरूपस्य सपदि,
प्रणम्योद्दामार्थ,प्रचुरवचसाऽवन्दत पुनः ।४।

इसके अनन्तर दैवज्ञकेसरी के पिता चक्रपाणि पूर्ण परब्रह्मानन्द सुधासरोवर में निमग्न चित्त से बद्धाञ्जलि होकर अपने भाग्यस्वरूप गुरु गोरक्षनाथ जी के चरणकमलों में वारंवार दंडवत् प्रणाम कर तत्काल

श्रीनाथ जी की अनुकम्पा से प्राप्त वाग्वैभव द्वारा उद्दाम तथा प्रचुर अर्थ वाली विशद वाणी से स्तुति करने लगे।

'भजे श्रीगोरक्षं, भुवि सकलसिद्ध्येकभवनं,
विरञ्चिश्रीवत्सि,स्मरहरमहोविग्रहधरम्।
धरापुत्रं लोको,द्धरणधिषणाध्यासिततनुं,
महासामर्थ्याब्धिं, भवजलधिपारीभवधियम् ॥५॥

'हे गुरुदेव ! आपको अनन्तकोटि नमस्कार है, आप संसार में सकल सिद्धियों के एक मात्र कुलभवन, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्र तीनों का तेजोमय बाल-गोरक्ष विग्रह धारण करने वाले, निरन्तर भूमि की कुक्षि के तुल्य गुहागार में निवास करने के कारण धरापुत्र, हे करुणामय ! लोकोद्धार के निमित्त नट की नाईं नाना शरीर धारण करने वाले, अतुल शक्तिशाली और भक्तों को भवसागर से पार करने में नित्य प्रस्तुत हैं; हम आप के शरण हैं।

विराजत्सिद्धौघ,प्रणतचरणं चण्डभुजगो,—
परिष्टादासीनं, भसितनिचयोद्भासितरुचिम्।
स्फुरज्ज्योत्स्नाचञ्च,त्स्फटिकगिरिशोभाकररुचिं,
विराजन्तं पीना,यतविपुलभव्याकृतिरुचा ॥६॥

हे नाथ ! आप षण्णवति मेघमालामय प्रचण्ड भुजङ्गों के उपर सिद्धासन बाँध बैठे हैं, योगशक्ति से देदीप्यमान सिद्धों के संघ आपके चरण-कमलों में प्रणाम करते हैं, आपके चन्द्रकला तुल्य गात्रों में अखण्ड विभूति शोभायमान है, दुग्धधवल भस्मोद्धूलन से आप की वैसी ही शोभा हो रही है; जैसी शारदी पूर्णिमा की रात्रि में विशद ज्योत्स्ना से स्फटिकाचल कैलाश की शोभा होती है, प्रौढ और विस्तीर्ण विपुल एवं भव्य

तेजोमण्डल से आपका मुखमंडल विराजमान है । आप के इस स्वरूप का हम सदैव ध्यान करते हैं ।

ज्वलद्भालभ्राज,न्नयनमथ काषायवसनं,
फणिव्यूहाभोगा,भरणगुणभूषायिततनुम् ।
जटाजालै र्निष्पा,दितमुकुटजूटाग्ररुचिरं,
चिदानन्दाद्वैता,मृतजलधिमग्नं परगुरुम् ॥७॥

हे त्रिलोचन ! आपके भालपट्ट में तृतीय नेत्र अग्नि जाज्वल्यमान है, सुधोज्ज्वल अबालपराक्रम बाल कलेवर पर, कैलासकूट पर सन्ध्यातप के तुल्य काषाय वस्त्र शोभायमान है ; अङ्ग-प्रत्यङ्ग में नाना वर्ण के नाग और उनके फणामणि दिव्य भूषणों का काम कर रहे हैं । बालभास्कर के अरुण किरणों के समान स्वर्णवर्ण जटाओं के जाल से निष्पन्न आपका रुचिर मुकुट विराजमान है, सच्चिदानन्दमय अद्वैतामृतसागर में सदैव निमग्न रहनेवाले आप समस्त गुरुजनों के परम गुरु हैं । हम आप का जप करते हैं ।

महारण्यभ्राज,द्वटविटपिमूलावनितल-
प्रदीप्यद्रत्नौघ-,स्फुरितमणिमञ्चासनगतम् ।
महाश्वेतच्छत्रा,धरतलगमद्वैतहृदयं,
समाधायासीनं, परमहिमनि ब्रह्मणि विभुम् ॥८॥

हेनाथ ! आप विशाल वनस्थली के मध्य में प्रतिष्ठित सान्द्र वटवृक्ष के मूल की परिष्कृत वेदिका पर दिव्य रत्नों से खचित स्फटिकमणि के भव्य सिंहासन पर विराजमान हैं, आपके ऊपर विशाल श्वेतच्छत्र सुशोभित है और आप परम महिमाशाली अद्वैतानन्दमय स्वस्वरूप ब्रह्म समाधि में मग्न हैं । आपका हम ध्यान करते हैं ।

षडैश्वर्यभ्राजन्महिमजगदुद्धारमुरहन् !,
महापद्माद्यास्ते, भव ! निधिगणास्ते करतले ।
अधीनाः सिद्ध्योघाः, महिमलघिमेशित्वसहिता,
वशित्वप्राकाम्याणिमगरिमसम्प्राप्तिरुचिराः ॥९॥

हेभव ! हेगोरक्ष !! समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन षड्विध ऐश्वर्यों से आपकी महिमा अपार है। आप समस्त संसार का उद्धार करने के लिये नानावतार धारण करते हैं। विष्णु आदि रूप से मुर मधुकैटभादि दैत्यों का संहार कर जगत् की बाधाओं को शान्त करते हैं। महापद्म-पद्म-शंख-मकर-कच्छप-मुकुन्द-कुन्द-नील और खर्व ये नव निधियाँ आप के करतल में रहती हैं। एवं अणिमा-महिमा-लघिमा-गरिमा-प्राप्ति-प्राकाम्य- ईशित्व और वशित्व ये अष्ट सिद्धियाँ आपके अधीन हैं और आज्ञाकारी हैं।

धरित्रीसञ्चार, ! त्रिदिवचर ! नागालयचरन् !,
नभश्चारिन् ! वात,ज्वलनजलचारस्तव वशः ।
त्रिकालप्रेक्षाव,त्त्रिगुणमय ! वेदागमगुरो !,
यदिच्छेस्तत्कर्तुं, प्रभवसि हि सर्वज्ञमुकुट ! ॥१०॥

हे गुरो ! हे गोरक्ष !! हे कामगते !!! आपकी गति अकुण्ठित है - सप्त पाताल, सप्त द्वीपवती पृथ्वी, स्वर्गादि सत्यपर्यन्त ऊर्ध्वलोक-अन्तरिक्ष-वायु-अग्नि और जल में आप स्वच्छन्द भ्रमण करते हैं। हे त्रिगुणमय ! आप तीनों गुणों का आश्रय लेकर सृष्टि-स्थिति-संहार करते हैं। हे त्रिकालज्ञ ! भूत-भविष्य-वर्तमान की बातें आप को प्रत्यक्ष हैं। हे वेदागमगुरो ! 'यस्य निश्वसितं वेदाः' समस्त निगमागमों के आदि गुरु आदि-

नाथ आप ही हैं। हे सर्वज्ञमुकुट! आप के अमोघ ज्ञान के प्रकाश में समस्त ब्रह्माण्ड करामलक तुल्य हो जाता है और आप जो चाहते हैं सो करते हैं, कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुं समर्थ हैं।

कृतार्थोऽस्मि स्वामिं,स्तव करुणया प्राप्तमहिमा,
यथा मां मद्वंशं, कुरु निजदयाम्भोधिभवनम्।
इदं त्वेकं याचे, चरमपवनोत्क्रान्तिसमये,
ममात्मा कैवल्यं लभतु, परमब्रह्ममहसि ॥११॥

हे स्वामिन्! हे नाथ!! आप की करुणा से मुझे अतुल महिमा मिली, आप के पुण्य दर्शन से मैं कृतार्थ हुआ, हेदेव! जैसी मुझ पर कृपा की ऐसी ही मेरे वंश पर सदा अनुकम्पा बनाये रखियेगा, अन्त में आप से यही एक वर माँगता हूँ कि जब मेरा अन्तिम श्वास निकले, तब मेरी आत्मा परब्रह्मस्वरूप आपकी ज्योति में कैवल्यभाव प्राप्त करे, लीन हो जाये।

त्वदीयः सामर्थ्यं, गदितुमथ वाचाम्पतिमति-,
र्नवा भूयाद् भूयात्, प्रभुरिति वितर्कीयति मनः।
तथापि त्वद्दत्त,प्रचुरकवितागर्वरभसा-,
न्मदुक्तं क्षन्तव्यं, ननु निजशिशूक्ति र्गुरुमुदे! ॥१२॥

हे नाथ! हे सदाशिव!! आप के सामर्थ्य का वर्णन करने में बृहस्पति की बुद्धि भी समर्थ है या नहीं? इस बात का सन्देह है। तथापि आप की दी हुई प्रचुर कविता के गर्व के आवेश में मैंने जो कुछ धृष्टता की इस पर क्षमा करें। क्योंकि बालकों की तोतली बोली माता, पिता, गुरुजनों को आनन्द देती है।

चक्रपाणि के सुपुत्र दैवज्ञकेसरी कहते हैं—

निशम्य निजवन्दनां, प्रमुदिते तवोक्तं भवे-,
दिति प्रचलिते गुरौ, सबहुमानमस्मत्पिता ।
प्रमोदभरनिर्भर,द्रढिममानसाम्भोरुहे,
निधाय गुरुपादयोर्युगमभूत्स सर्वोत्तमः ॥१३॥

इति श्रीगोरक्षचरणकमलधूलिधूसरितमौलिगोरक्षवरप्रसादलब्ध-
समृद्धगोरक्षसाम्राज्यसार्वभौमस्वस्तिश्रीगिरिराजचक्रचूडा-
मणिनरनारायणेत्यादिविविधविरुदावलिविराजमानमानो-
न्नतनतशरणसकलसामन्तमुकुटमणिमरीचिचोचुम्ब्य-
मानचरणयुगलश्रीपृमन्महाराजाधिराजपृथ्वीनारा-
यणसिंहदेवपुरोहितातिनिखिलनिगमागममथन-
मन्दरायमाणगोरक्षवरप्रदानलब्धसरस्व-
तीनिवासमसृणरसनाञ्चल-
चक्रपाणिप्रणीता

श्रीगोरक्षवरस्तुतिः

सम्पूर्णा

इस प्रकार अपनी दिव्य स्तुति सुनकर अति प्रसन्न मन से 'तथास्तु' तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो, ऐसा वर देकर भगवान् गोरक्षनाथ जी के अन्तर्धान हो जाने पर आनन्द से गद्गद और प्रफुल्ल हृदयकमल में भक्तिपूर्वक चराचरगुरु गोरक्षनाथ जी के चरणकमलों को स्थापित कर हमारे पिता घर लौट आये। गोरक्षवर से संसार में सबसे उत्तम हुए।

अनुवादक—**विष्णुनाथ योगी**

—·—

नमो गोरक्षाय शिवाय

गोरक्षभुजङ्गप्रयाताष्टकम्

लसद्दण्डदोर्दण्डसन्दीपिताशं,
जटामण्डलामण्डितोच्छीर्षमीशम् ।
जरोत्फाटिके स्फाटिके सन्दधानं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥१॥

तडित्पातचञ्चन्नवीनाम्बुदाभां,
वसानं मृगेन्द्रत्वचं चन्द्रभासम् ।
विभूत्या सभूत्या च्छटाच्छन्नवह्निं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥२॥

करेऽलाबुपात्रं स्मरोद्रिक्तगात्रं,
दधानं प्रधानं सुधाधानपात्रम् ।
स्फुरड्डाकिनीवीरवेतालदात्रं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥३॥

यशःपूरकर्पूरसम्पूरिताशं,
चरद्भूचरीसिद्धमुद्राविलासम् ।
लसत्खेचरीध्वस्तकालैकपाशं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥४॥

भयोद्भग्नभूतावलिं पापिशीलं,
भवोद्विग्नभूयोनिकेलिं सुखेलम् ।

भवारण्यदावानलं चातिवेलं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥५॥
जगत्त्राणदक्षं नमत्प्राणपक्षं,
हठाकृष्टयोगं सदात्यक्तभोगम् ।
विपच्चारिसञ्चारवर्त्मन्युदारं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥६॥
चलल्लोलकल्लोलसंसिक्तकायं,
सुधाम्भोनिधे र्योगिनीवृन्दमायम् ।
जरामृत्युशङ्काविहीनं वशीनं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥७॥
सुकन्थां वहन्तं दहन्त विपाक,
लिहन्तं परब्रह्म सच्चित्स्वरूपम् ।
चिदानन्दसन्दोहविज्ञानमूर्तिं,
सुगोरक्षगोरक्षनाथं नताः स्मः ॥८॥
स्तवाधीशमेनं पठेदेकचित्तो,
वशे तस्य लोको भवेन्नान्यथा स्यात् ।
असौ पातु राजेन्द्रचूडामणिंतं,
नरश्चानपूर्वस्थभूपालसंज्ञम् ॥९॥

इति श्रीगोरक्षाचलाचलापालनरभूपालभूपालपालितलक्ष्मीश्वरसूरिविरचितं,
गोरक्षभुजङ्गप्रयाताष्टकं
सम्पूर्णम्

नमो गोरक्षपादुकाभ्याम्

शिवगोरक्षस्तवः

कीनाशपाशभीतोऽयं, नन्दी तेपे तपस्तव ।
बालोऽपि लोकितो देव !, त्वया जातोगणाग्रणीः ॥१॥
वरिवस्याफलं लब्धं, त्वच्चक्रं चक्रपाणिना ।
हताशः को गतो यस्ते, चरणौ शरणागतः ? ॥२॥
सिन्धुजश्चक्रिणं चक्रे, कारायां क्षारवारिधौ ।
त्रिलोक्यामेकवीरोऽसौ, तव क्रीडासु कन्दुकः ॥३॥
भ्रूलतामुन्नतां यस्य, न सेहे जगतां त्रयी ।
पादाङ्गुष्ठभरं सोऽयं, न सेहे ते दशाननः ॥४॥
अच्युतः प्रच्युतो यस्मा, च्छक्राद्याः प्रपलायिताः ।
स त्वया लीलया दग्धः, करालस्त्रिपुरासुरः ॥५॥
पतद्गङ्गा तनोतिस्म, ध्वनेस्त्रस्तां जगत्त्रयीम् ।
सा ते भाति मृणालीव, जटाजूटोपवेष्टिता ॥६॥
वृषः सिंहः शिखी सर्पाः, मूषकोऽन्येऽपि तादृशाः ।
बन्धुभावेन वर्तन्ते, त्वद्गृहे गिरिजापते ! ॥७॥
मौलौ ते मालतीमाला, कल्लोलिन्या कलाधरः ।
अट्टहासो मुखे व्यालो, गले गात्र सुधोज्ज्वलम् ॥८॥

अकाण्डं ताण्डवं दृष्ट्वा कल्पान्ते गुहवाहिना ।
नूनं प्रबोधिता नाथ !, ताण्डवज्ञाः शिखण्डिनः ॥९॥
नीलं कण्ठे नीलकण्ठो नीलकण्ठस्य ते विभो ! ।
भावयन् प्रीतिमापन्नो, नीलाम्भोदेऽनुरज्यति ॥१०॥
नूनं कृष्णो भवेत्पूर्वं, शेषः काकोदरान्वयः ।
त्वत्परिग्रहतो नाथ !, धवलिम्नानुमण्डितः ॥११॥
फणिकङ्कणिने तुभ्य, पाणिनिः प्रणनाम यत् ।
तेन तेन वितेने त, न्मुख्यं व्याकरणं क्षणात् ॥१२॥
मृकण्डुसूनुना नाथ !, गृहीतौ चरणौ तव ।
बहवः प्रलया दृष्टा, द्रक्ष्यन्ते तेन ते पुनः ॥१३॥
ईशास्तथेश्वराः केचि, त्त्वं महेशो महेश्वरः ।
देवा नटाश्च केचित्त्वं, महादेवो महानटः ॥१४॥
काणान्धद्विदृशश्चान्ये, त्वञ्च नाथ ! त्रिलोचनः ।
वृषच्छेदपरा अन्ये, वृषारूढो विराजसे ॥१५॥
विशदस्त्वं परे कृष्णा, शिवस्त्वमशिवाः परे ।
अन्ये जनार्दनाः ख्याताः, शङ्करस्त्वं सुविश्रुतः ॥१६॥
पञ्चाननो भवानन्ये, चतुस्त्रिद्वयेकवक्त्रिणः ।
चतुर्भुजा द्विदोषाश्च, परे दशभुजो भवान् ॥१७॥
एकैकमूर्तयश्चान्ये, तवाष्टौ मूर्तयः श्रुताः ।
वैकुण्ठा इतरे प्रोक्ता, स्त्वमकुण्ठो विराजसे ॥१८॥

आशुतोषो भवानन्ये, कष्टतोषा दुरासदाः ।
उपेन्द्राः केचिदाख्याता, भवानिन्द्रादिभिः स्तुतः ॥१९॥
जालन्धरजिताः सर्वे, त्वया जालन्धरोजितः ।
त्वया भस्मीकृतः कामः, सर्वेऽन्ये कामकिङ्कराः ॥२०॥
भीता हालाहलादन्ये, स तेऽभूत्कण्ठमण्डनम् ।
इत्थं वैषम्यसम्प्राप्तौ, शम्भो ! केनोपमीयसे ? ॥२१॥
त्वज्जटावनसारङ्गी, शृङ्गारो वसुधाश्रियः ।
भूतधात्री धृतायेन, स ते यज्ञोपवीतकम् २२॥
अकामः कामदोऽन्येषां, विषमाक्षः समेक्षणः ।
नगजाननपद्मार्को, गजाननगुहात्मजः ॥२३॥
दोषाकरधरोऽदोष, आशावासा विभूतिमान् ।
भुजङ्गेशः सदाचारो, निर्गुणो गुणमन्दिरम् ।२४॥
स्मरारिः स्मरतां नाथः, कपर्दी च महेश्वरः ।
अजन्मा जनकोऽन्येषां, त्रिशूली च निरामयः ॥२५॥
गङ्गाधरः सरिन्मौलिः, कालकूटाशनोऽमृतः ।
त्रिधामा धामरहितो, धवलो नीललोहितः ॥२६॥
धनाधिपसखो भिक्षु, र्दन्दशूकप्रियो मृडः ।
पद्मासनः पञ्चमुखः, पिनाकी योगतत्परः ॥२७॥
अनाथस्त्वं जगन्नाथो, भीमस्त्वं भयनाशनः ।
भवस्त्वं भवहीनस्त्व,मशिवैः सेवितः शिवः ॥२८॥

आशुतोषो दुराराध्यो, नीलकण्ठोऽहिवल्लभः ।
अष्टमूर्तिरमूर्तिश्च, स्थाणु र्मोक्षफलप्रदः ॥२९॥
श्रीकण्ठः पार्वतीकान्तो, गोरक्षः क्षयितक्षितिः ।
विरुद्धोवाऽविरुद्धोवा, तव तत्त्वं न विद्महे ! ॥३०॥
पुरन्दराभिधे राज्ञि, पुरन्दरपराक्रमे ।
भुवं शासति गोरक्षा, चलदुर्गकृतालये ॥३१॥
तेन दत्ता श्रयस्तेने, भक्त्या शिवगुरोः शिवम् ।
शिवगोरक्षनाथस्य, शिवरामकृती स्तवम् ॥३२॥
सर्वातिशयमैश्वर्य, मैश्वरं द्योतयं स्तवः ।
सर्वातिशयमैश्वर्यं, तनुतां स्तुवतां नृणाम् ॥३३॥

इतिश्रीगोरक्षचरणकमलधूलिधूसरितमौलिसकलसामन्तमौलिमालालालित-
ललितचरणयुगलपुरन्दरपराक्रमपुरन्दरपुराङ्गणगणिकागणजेगीय-
मानकीर्तिरघुकुलतिलकवप्पवंशावतंसस्वस्तिश्रीगिरिराजचक्र-
चूडामणिनरनारायणेत्यादिविविधविरुदावलिवलित
गोरक्षाचलाधीशश्री५मन्महाराजाधिराजपुर-
न्दरसिंहदेवसमाश्रितसमस्तशास्त्रज्ञशिव-
रामशर्मकृतः

शिवगोरक्षस्तवः ।

सम्पूर्णः ।

———

ॐ नमोभगवते गोरक्षनाथाय

(श्रीमद्गोरक्षनाथाष्टकम्)

श्रीमद्गोरक्षनाथं, कुतलपतिगणो, द्धारकं भूप्रसिद्धं,
त्रैकालज्ञं दयालुं, स्वदहरकमले, चिन्तयन्तं, स्वरूपम् ।
योगीन्द्रेशं वरेशं, निखिलजगदिदं, प्रेक्षमाणं समक्षं,
योगाचार्यञ्च युक्तं, सकलगुणनिधिं, सद्गुरुं तं नमामि ॥१॥

पृथिवीतल के राजसमूह के उद्धारक समस्त पृथ्वी में प्रख्यात भूत, भविष्य, वर्तमान तीनकाल के जानने वाले जैसे योगसूत्र में लिखा है— (तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमञ्चेतिविवेकजं ज्ञानम् यो० सू० ३पा०) "सर्वथा विषयमतीतानागतप्रत्युत्पन्नम् - व्यास भाष्यम्" दयालु अपने हृदय रूपी कमल में अपने स्वरूप सच्चिदानन्द को स्मरण करते हुए (अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्मदहरोऽस्मिन्नंतराकाश स्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वा व विजिज्ञासितव्यमिति श्रुतं ३०८ अ०) योगियों के आचार्यों के भी आचार्य श्रेष्ठों के स्वामी समस्त संसार को प्रत्यक्ष देखने वाले (भूवनज्ञानं सूर्ये संयात् यो० सू० ३-पा०) अणिमादि ऐश्वर्यगुणों के अधिष्ठाता (ततोऽणिमादि प्रादुर्भावः यों० सू० ३ पा०) विनाध्यानके सकल पदार्थों का अनुभव करने वाले (युक्तस्य सर्वथा भानम् व्या० का० प्र० ख०) योगशास्त्र के आचार्य सद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी को में प्रणाम करता हूँ ॥१॥

पद्माभांङ्घ्रिं सुगात्रं, कमलकरतलं, पद्मतुल्यास्यनेत्रं,
प्रेक्ष्यं श्लाघ्यं सुहास्यं, प्रकृतिविमलकं, ध्यानयोग्यं प्रसन्नम् ।
शान्तं दान्तं वदान्यं, पशुपतिमवनौ, नीतवासं हिताय,
साक्षाच्छम्भुं स्मरारिं, स्फटिकमणिनिभं, नौमि गोरक्षनाथम्

कमलवच्चरण सुन्दर शरीर कमल के सदृश हस्ततल, कमल के तुल्य सुचारु मुख और नेत्र रमणीय तथा दर्शनीय मधुर हँसने वाले स्वच्छ स्वभाव वाले अर्थात् तमो रजो गुणों से रहित ध्यान योग में लीन रहने वाले प्रसन्नचित्त शान्त अन्तर इन्द्रियदमनकारी दान्त बाह्य इन्द्रियों को वश करने वाले मधुर उपदेशों से जगत् को मोहित करने वाले पशुरूप अज्ञानी जीवों को योगादि उपदेश द्वारा परिरक्षक भक्तों के हितार्थ पृथ्वी पर निवास करने वाले, साक्षात् शिवरूप (तथा) कामदेव को भस्मीभूत करने वाले, स्फटिक मणि के समान गौरवर्ण एतादृश श्री गोरक्षनाथजी को प्रणाम करता हूँ ।।२।।

इन्द्रोपेन्द्रार्कचन्द्र, श्वसनदहनक, ब्रह्मयक्षेशकालैः,
सिद्धै र्नागैः प्रचेतो, निखिलसुरगणै, र्दैत्यवर्यैश्च मुख्यैः ।
स्वात्मारामाप्तकामै,ः सकलमुनिगणै, स्तत्त्वविद्भिश्च नित्यं.
पूज्यं ध्येयञ्च वन्द्यं, तपनशतनिभं, नौमि गोरक्षनाथम् ।।३।।

इन्द्र, उपेन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, वह्नि, ब्रह्म, यक्षराज, काल, सिद्ध, नाग, वरुण, समस्त देवतागणों से तथा दैत्यवरों से स्वात्मा में आराम करने वालों से निखिल कामनाओं के प्राप्त करने वालों से सकल मुनिगणों से और तत्त्वज्ञानियों से नित्य पूज्य एवं वन्दनीय ध्यान योग्य शतसूर्य सदृश प्रकाश समस्त जगत् के गुरु श्री गोरक्षनाथ जी को मैं अभिवादन करता हूँ । ।।३।।

खं वातोऽग्निः किलापः, कुकुधरनगका, नागगन्धर्वयक्षाः,
सूर्यः सोमश्च तारा, जलधिजलचरा, भूचराःखेचराश्च ।
पातालस्था हि दैत्या, स्त्रिभुवनकगतं, स्थावरं जंङ्गम् यत्,
तेषां हेतुं निमित्तं, निजजनसुखदं, नौमि गोरक्षनाथम् ।४॥

आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, पर्वत, वृक्ष, नाग, गन्धर्व, यक्ष, सूर्य, चन्द्रमा, और तारा, समुद्र, जलचर, भूचर, खेचर और पाताल में रहने वाले नाना दैत्यगण त्रिभुवन में निवास करने वाले स्थावर तथा जङ्गम जो इन सब का निमित्त कारण तथा निज भक्तों को सुख देने वाले सद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी हैं उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥४॥

मोक्षस्थानं प्रधानं, त्रिभुवनविदितं, शान्तमूर्तिं ह्यमूर्तिं,
योगिध्येयं कवीन्द्रैः, सुविमलमतिभि, र्गीयमानं च नित्यम् ।
श्रुत्या स्मृत्या पुराणैः, कपिलमुनिकृते नेतिहासैश्चयोगै,
र्वेद्यं शुद्धं च बुद्धं, सुनिगमविदितं, नौमि गोरक्षनाथम् ॥५॥

मोक्ष के श्रेष्ठ आधार तीन भुवनों में सुप्रसिद्ध, भक्तों के भक्त्यनुरूप. शान्तमूर्ति स्वतः निर्गुण अर्थात् मूर्तिरहित, योगिजनों के ध्येय रूप सुविमल मति कवीश्वरों से सदा काल गीयमान (गायन किये जाने वाले) श्रुति, स्मृति, पुराण, सांख्य, इतिहास तथा योग शास्त्र से जानने योग्य शुद्ध बुद्ध अर्थात् सच्चिदानन्दरूप वेदों से सुप्रख्यात सद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

संसाराद्यं ह्यनाद्यं, निखिलजगदिह, व्याप्यमानं वियद्वत्,
तत्त्वं मुक्तं हि पूर्णं, सुविमलमतिभि, र्योगिभि र्ध्यानगम्यम् ।

सज्ज्ञानानन्दरूपं, गगनकसदृशं, तत्वमस्यादिलक्ष्य-,
मेकं नित्यं च रम्यं, श्रवणमननगं, नौमि गोरक्षनाथम् । ६॥

संसार के आदिकारण, स्वयं अकारणक अर्थात् इनका कारण कोई भी नहीं । आकाशवत् जिनसे समस्त जगत् व्याप्त है । तीनों काल में बाधरहित (वास्तविरूपं) अभिधाद्ध बन्धन से विनिर्गत । अखण्डैकरूप । स्वच्छ बुद्धियुक्त योगिजनों के ध्यानगम्य । सत् रूप, ज्ञान रूप, आनन्दरूप (सत्यंज्ञानमानन्दं ब्रह्म) आकाश के समाननीरूप । तत्त्वमसि आद्दि महावाक्यों कालक्ष्यस्वरूप (तत् पद का अर्थ है सर्वज्ञ चेतन और त्वं पद का अर्थ है अल्पज्ञ चेतन इनके विशेषांशों का त्याग कर केवल चेतना में लक्षणा वृत्ति से सिद्ध होता है कि अद्वैत सजातीय विजातीय स्वगत भेदशून्य एक और नित्य (अविनाशी) (एकमेवाद्वितीयम्) सुन्दर तथा श्रवण, मनन द्वारा ज्ञययान सद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी को अभिवादन करता हूँ ॥६॥

विश्वाधारं च सारं, किल विमलतरं, निष्क्रियं निर्विकारं,
लोकाध्यक्षं सुवीक्ष्यं, सुरनरमुनिभिः, स्वर्गमोक्षैकहेतुम् ।
स्वात्मारामाप्तकामं, दुरितविरहितं, ह्यागमाज्ञाविहीनं,
द्वन्द्वातीतं विमोहं, विमलशशिनिभं, नौमि गोरक्षनाथम् ।७।

विश्व के आधार, समस्त संसार के सार, अत्यन्त स्वच्छ, क्रिया-विरहित, षड्विकार-शून्य, लोकत्रय के अधिष्ठाता, श्रेष्ठ देवता और मुनियों के दर्शन योग्य, स्वर्ग और मोक्ष के निमित्त कारण, स्वात्मा में आराम (विश्राम) के द्वारा जिन्होंने त्रिभुवन के प्राप्य पदार्थों को प्राप्त कर लिया है । पाप विहीन, वेदविधि निषेध से रहित, लौकिक सुख-दुःखादि

द्वन्द्वातीत, अज्ञान-रहित, निर्मल चन्द्र सदृश कान्ति वाले सद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी को प्रणाम करता हूँ ॥७॥

कर्तृत्वाद्यैः समस्तैः, कमलमुकुलव, न्नाभिलिप्तं स्वतृप्तं,
साक्षीभूतं हृदिस्थं, सकलकरणकेशं किलानन्तरूपम् ।
ज्योतीरूप चिदाख्यं, ह्यखिलसमदृशं, शङ्करं ब्रह्ममूर्ति,
सर्वात्मान निदिध्या,सनविधिमुखगं, सद्गुरुं तं नमामि ॥८॥

कर्तृत्व, संहारकत्व, स्थापकत्व धर्मों से कमलकलि के सदृश नाभिस्थल में लिप्त, अर्थात् नाभिचक्र में स्थित रहने वाले (तृष्णादि से रहित) लोकत्रय के साक्षीभूत, एवं सर्वहृदयनिवासी (जैसे कि भगवान् ने स्वगीता में कथन किया है—

"ईश्वरः सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन ! तिष्ठति ।
भ्रामयन् सर्वभूतानि, यन्त्रारूढानि मायया ॥" (गीता)

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी "य आत्मनि तिष्ठन्" इत्यादि । सब इन्द्रियों के स्वामी, योगशक्ति से नानारूप धारण करने वाले, तेजोमय, शुद्ध चैतन्यरूप, समस्त जगत् को सम देखने वाले, अथवा सबमें सम भाव से रहने वाले, कल्याणकारी, ब्रह्ममूर्ति, सर्व के अन्तर्यामी, निदिध्यासन-विधि से जानने योग्य, श्री गोरक्षनाथ जी को नमस्कार करता हूँ ॥८॥

माहात्म्य—

श्रीमद्गोरक्षनाथस्य, ह्यष्टकं सकलार्थदम् ।
दिवारात्रौ पठेद्यस्तु, सोऽत्र मोक्षैकभाजनम् ॥९॥

धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के देने वाले श्री गोरक्षनाथ जी के अष्टक का जो जन दिन रात पाठ करता है। वह सर्व अपवर्ग का भागी अवश्य होता है ॥९॥

मूलग्रन्थकर्त्ता

प्वन्त्याजन्त्यसुपृक्तकं कुतुमुखे, लघ्विप्रयुक्ते समं,
काद्यं त्वन्तिमिकं ह्यजासुमिलितं, त्राद्यात्परं चापरम् ।
उक्तैस्तै र्निखिलै यथाक्रमयुतै, र्यन्नाम लब्धं च वै,
तन्नाम्ना मयका कृतं सुललितं, गोरक्षनाथाष्टकम् ॥१०॥

पवर्ग के अन्त्य (म्) अचों के अन्त्य (औ) से युक्त मौ, कवग तथा तवर्ग के आदि अक्षर (क्-त्) लघुरूप इकार सम्मिलित कवर्ग के आदि (क्) अच्रूप (अ) से संमिश्र (क तवर्ग के अन्तिम अक्षर (न्) अच् रूप (आ) से युक्त (ना) तवर्ग के द्वितीय अक्षर से पर अपरक (थ) इन स्वर और व्यञ्जनों से सिद्ध (मौक्तिकनाथ) नामक मैंने सुललित शब्दार्थ और उत्तम छन्द में श्री गोरक्षनाथाष्टक का निर्माण किया ॥१०॥

कामो याचितवन्हिसुन्दरपदं. सम्बुद्धिसम्बन्धि किं ?,
कं कामस्य पिता दधाति नितरां, दृष्ट्वा कम्बु द्वारके ।
शक्राद्याः पतिता द्रुताश्च कथय, व्यस्तं समस्तं पदं,
मर्यादा दशवार्षिकी वद सखे !, पाण्डित्यगर्वं त्यज ॥११॥

इति श्री शास्त्रार्थमहारथि पण्डित मौक्तिकनाथ योगिराजविरचितं
श्रीमद्भगवद्गोरक्षनाथाष्टकं सम्पूर्णम् ।

इति श्री व्या० वे० आ० स० द० सू० पं० द्रव्येशझा
मैथिलकृतभाषाटीकया समलङ्कृतं सम्पूर्णम् ।

॥ अथ श्रीगुरुगोरक्षाष्टकम् ॥

यतीन्द्रं योगीन्द्रं, सकलवसुधाया हितकरं ।
सदा सेव्यं भव्यैः, कलिमलदहं साधुसुखदम् ॥
परं पारं ज्योति,र्जनिमृतिहरं कारणपरं ।
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शङ्करगुरुम् ॥ १ ॥

जो यतियों के इन्द्र, योगियों के इन्द्र, समस्त वसुधा के हित कारी, सदा भव्य लोगों के सेव्य, कलिमल को भस्म करने वाले, साधुओं को सुख देने वाले, समस्त संसार के कारण जन्म मृत्यु के हरण करने वाले, परम ज्योतिस्वरुप और श्रुतियाँ जिसकी महिमा का गान करती हैं, उस गोरक्ष-रुपी परम गुरु शंकर को हम नमस्कार करते हैं ॥१॥

सदा शान्तो दान्तो, हरिविधिमहेशैरपिवली,
समारं मां मायां, सकलभवदोषान्प्रतिजयी ।
गुणागारं पारं, परमकुशलो योगविधिना,
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शंकरगुरुम् ॥ २ ॥

जो सदा शान्त, दान्त, हरिहर ब्रह्म से भी बली, मार सहित समस्त माया और सकल भव दोषों को जीतने वाले समस्त गुणों के आगार योग-विधि में परम कुशल, श्रुतिगीत कीर्ति उस गोरक्ष रुपी शंकर गुरु का हम भजन करते हैं ॥२॥

सुरेशं योगीशं, निखिलजनतापत्रयहरं,
दयालुं गोपालं, निजजन-सदा-पालनपरम् ।
स्वभक्तेभ्यो योगं वितरति सदाकष्टहृतये,
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शङ्करगुरुम् ॥ ३ ॥

जो देवताओं के ईश्वर, योगियों के ईश्वर निखिल लोकों के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापों का हरण करने वाले, दयालु, गौवों का पालन करने वाले, अपने अनन्य भक्तों का सदैव परिपालन करने वाले, समस्त कष्टों का हरण करने के लिये स्वभक्तों के योगविधि के देने वाले हैं, उन श्रुतिप्रतिपाद्य गोरक्ष रूप परम गुरु सदाशिव का हम भजन करते हैं ॥३॥

न याचे साम्राज्यं, तव चरणसेवां भवगुरो,
स कंसारि र्लेभे, तव चरणसेवी निजवधूम् ।
त्वयि श्रद्धा भक्ति र्वितरति सदा वाञ्छितफलम्,
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शङ्करगुरुम् ॥ ४ ॥

हे भवगुरो ! त्रैलोक्य साम्राज्य की हमें अपेक्षा नहीं, हम तो आप के चरण कमलों की सेवा चाहते हैं। क्योंकि आपके चरणसेवी कंसारि कृष्णचन्द्र ने आपकी कृपा से परम सुन्दरी रुक्मिणी को प्राप्त किया ! आप में की हुई श्रद्धा और भक्ति सदैव वाञ्छित फल को देती है, श्रुति-स्मृति के परम लक्ष्य, त्रैलोक्य प्रसिद्ध शङ्कर गुरु गोरक्षनाथ ! आपको नमस्कार करते हैं ॥४॥

स्वरूपे संस्थाप्य, श्रवणगतवाक्येन विदितं,
भवाब्धौ मग्नान्या,नुपदिशति चोद्धारयति च ।

स वै गोरक्षो मा,मपि निशि दिवा पालयति च,
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शङ्करगुरुम् ॥ ५ ॥

जो संसारसमुद्र में निमग्न प्राणियों को उपदेश देकर श्रवणगत वाक्य से उद्धार कर देता है और स्वरूप में स्थापित कर देता है । वही जगत्पालक भगवान् गोरक्ष अहर्निश हमारी भी पालना करता है, ऐसे श्रुतिसार शिव गुरु गोरक्षनाथ का हम भजन करते हैं ॥५॥

स्म गोरक्षं नाथं, भजति नृपवृन्दं क्षितितले,
परं मोक्षं लेभे,जगति सुखसारञ्च परमम् ।
पुरा गोपीचन्द्र, प्रभृतय उदैश्वर्यमिह किम्,
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शंकरगुरुम् । ६॥

भूमण्डल में समस्त राजाओं ने भगवान गोरक्षनाथ जी के चरणों का भजन कर इस लोक में राज्य लक्ष्मी अन्त में मोक्ष लक्ष्मी का उपभोग किया, जिनमें गोपीचन्द्र, भर्तृहरि, पूर्ण आदि उत्कृष्ट ऐश्वर्य के भागी बने, ऐसे श्रुतियों से गीयमान् चरणारविन्द त्रैलोक्यगुरु गोरक्ष रूपी मृत्युञ्जय की शरण जाते हैं ॥६॥

अप्रपञ्चस्यास्य त्वां, कथयति यदा मूलजनकं
यतो जातं लीनं, स्थिरमपि च तत्रैव भवति ।
तदा गोरक्षार्य,श्चरति भुवनेऽस्मिन् प्रमुदितः !
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं शंकरगुरुम् ॥ ७ ॥

हे नाथ जब इस समस्त प्रपञ्च का मूल जनक श्रुति आप को कहती है तो यह सिद्ध है कि जो वस्तु जहाँ से उत्पन्न होती है उसीमें स्थिर रहती है और अन्त में उसीमें लीन हो जाती है । यही नियम संसार का है, जो आपसे उत्पन्न हुवा, आप में स्थिर रहा और आप में ही लीन

हो जायगा, तो इससे यह सिद्ध हुआ कि संसार में चराचर रूप से आप ही विद्यमान हैं, वेद आपके सूक्ष्म तत्त्व का प्रतिपादन करते, हे कल्याणमय हे शङ्कर ! समस्त जगत् के रक्षक गोरक्ष देव ! आपको नमस्कार है ॥७॥

निराकारं सारं, स्फुरणरहितं शुद्धविमलम्,
अहो भ्रांतो मूढः, कलयति जनो द्वैतमपि यम् ! ।
सदा शुद्धे मिथ्या, निखिल जगदारोपणमिदं,
भजे तं गोरक्षं, श्रुतिनुतपदं, शङ्करगुरुम् ॥ ८ ॥

जो निराकार है, समस्त संसार का सार स्वरूप शुद्ध निष्कलङ्क, स्फुरण और क्षोभरहित है। अद्वैत ब्रह्म स्वरूप को भ्रांत मूढ़ जन द्वैत दृष्टि से देखते हैं, जो सदा शुद्ध है, उस पर निखिल प्रपञ्चों का आरोप करना उसी प्रकार मिथ्या है जिस प्रकार शून्य आकाश में मेघों का, ऐसे सच्चिदानन्दस्वरूप शङ्कर गुरु गोरक्ष का हम भजन करते हैं ॥८॥

गङ्गानाथकृतां स्तुतिं शुचिमनाः, कल्ये पठे द्भक्तिमान्,
मोक्षार्थी लभते च मोक्षपदवीं, पुत्रं कलत्रं परः ।
प्राज्यं राज्यमकण्टकं शुचि यशो,धर्मार्थकामादिकं,
गोरक्षेऽक्षयकल्पकल्पनपटौ, तुष्टे किमिष्टं पुनः ? ॥९॥

जो मनुष्य इस पवित्र स्तोत्र को प्रसन्न मन से प्रातः काल पढता है, वह यदि मोक्षार्थी हो तो मोक्षपद प्राप्त करता है, भोगार्थी हो तो भोग प्राप्त करता है उसे अकण्टक विशाल राज्य औरनिष्कलङ्क कीर्ति प्राप्त होती है, धर्मार्थकामादि पुरुषार्थ भी प्राप्त करता है। अक्षय मोक्ष के दाता गोरक्ष के प्रसन्न हो जाने पर और क्या अभीष्ट अवशिष्ट रह जाता है, ?

अनुवादक—
योगी विष्णुनाथ
देहरादून

श्रीनाथाय नमः

श्रीगोरक्षनाथाष्टकम्

प्रपश्यन्ति ध्यानाऽ,चलितमनसा यं मुनिवराः,
लभन्ते कैवल्यं, गुरुकरुणया ते गतभयाः ।
नमामीड्यं सर्वै,र्निरवयवमीशानमिह तं,
गुणातीतो ज्ञेय, श्चपलमनसा नो कथमपि ॥ १ ॥

निश्चल मन से मुनिवर ध्यान में जिसका साक्षात्कार करते हैं और गुरु-करुणा से निर्भय होकर कैवल्य पद प्राप्त करते हैं, ऐसे निरवयव निश्कल उस ईश्वर को जो गोरक्षनाथ के नाम से नाना प्रकार की लीलायें करता है, समस्त प्राणियों के स्तुत्य उस गुणातीत (त्रिगुणातीत) को नमस्कार है जो चंचल मन से दुर्लभ है ॥ १ ॥

पवित्रं माङ्गल्यं, विमलगुणयोगाद्गुरुवरं
प्रियं यन्नामाग्र्यं, परमगुरु-गोरक्ष इति तत् ।
भजन्ते ये भक्त्या, यमनियम-युक्तैकमनसा
लभन्ते ते मोक्षं, जगति पुनरायान्ति न च ते ॥२॥

पवित्र माङ्गल्य और सर्वलोक प्रिय जिसका श्रेष्ठ नाम परम गुरु गोरक्ष ऐसा है उस निर्मल गुण वाले गुरुवर का यम, नियम आदि युक्त मन से जो लोग भजन करते हैं वे लोग मोक्षपद को प्राप्त करते हैं, और संसार में उनका पुनर्जन्म नहीं होता ॥ २ ॥

बहिश्चित्ताः ख्याता, इह नृपतयस्तेऽपि बहवः,
पर पारं नीता, भवजलनिधे र्येन कृपया ।
स भीतं मां शश्व,न्नयतु भवपारं निरवधिं,
भजे श्रीगोरक्षं, जगति विदितो यो मुनिवरः ॥३॥

संसार में राजा लोग बहिर्मुख वृत्ति वाले प्रसिद्ध हैं, वे भी जिसकी कृपा से संसारसागर से पार हो गये, वह संसार से भयभीत मुझे पार लगावे, संसार में जिसकी कीर्ति फैली हुई है उस मुनिवर गोरक्षनाथ का हम भजन करते हैं ॥ ३ ॥

कुतो योगध्यानं, यमनियमपीठप्रभृतिभि-,
र्विहीनस्त्वां भक्त्या, गुरुवर ! प्रपन्नोऽस्मि कृपया ।
शरण्य भो स्वामिन् !, नव झटिति मां दीनमनसाऽ-,
भिवन्दे पादाब्जे, तव वरद ! दिव्येऽल्पमतिमान् ॥४॥

हे गुरुवर ! योग ध्यान की तो बात ही क्या यम, नियम, आसन इत्यादि अष्टाङ्ग योग से विहीन केवल भक्ति से मैं आपके शरण आया हूँ, हे गोरक्ष ! हे स्वामिन् ! कृपया मुझ शरणागत की शीघ्र रक्षा कीजिये, हे वरद ! अल्पमति मैं दीन चित्त से आपके चरण कमलों का अभिवन्दन करता हूँ ॥ ४ ॥

महैश्वर्य स्वामिन् !, मयि भृशमनन्यैकशरणे,
त्वदीयोपेक्षा स्या, द्यदि बत ! तदा देव ! वद मे ? ।
व्रजेयं त्वां हित्वा, शरणमपरं नाथ ! कमिह ?,
ततो नैवोपेक्षा, गुरुवर ! विधेयाऽत्रभवता ॥ ५ ॥

हे नाथ ! हे स्वामिन् ! आप समग्र ऐश्वर्यसम्पन्न हैं, मैं अनन्य शरण होकर आपके शरण आया हूँ, यदि मुझपर आपकी उपेक्षा हैं तो हे देव ! आपही कहिये कि मैं आपके चरणों को छोड़कर किसकी शरण जाऊँ ?, इसलिये हे गुरुदेव ! मुझपर आपकी उपेक्षा अनुचित है ॥ ५ ॥

हरद्वारक्षेत्रे, परमललितं स्थानममलं,
दलीचेत्याख्यातं, नृपति-गणसेव्यं ह्यघहरम् ।
गुरो गोरक्षस्या,ङ्घ्रिवर कमले तत्र विदिते,
नमो नित्यं त्याभ्यां, मुनिगणनताभ्यां प्रतनुमः ॥६॥

हरद्वार के पवित्र क्षेत्र में नृपतिगणों का सेवनीय परम सुन्दर और निर्मल दलीचा नाम का विख्यात स्थान है, वहाँ पर त्रिभुवन गुरु गोरक्ष नाथजी की चरणपादुका विराजमान है, उन मुनिगणों की वन्दनीय चरणपादुका को हम नमस्कार करते हैं ॥ ६ ॥

योगाचार्यवरं विशुद्धमनसं, गोरक्षनाथं गुरुं,
ज्ञानानन्दमहोदधिं सुविदितं, पूर्णं दयासागरम् ॥
भक्तानामभयप्रदं करुणया, कैवल्यमोक्षप्रदं,
वन्दे देवमनामयं रविनिभं, मोहान्धकारापहम् ॥७॥

जो योगाचार्यों में श्रेष्ठ है, विशुद्ध हृदय वाले हैं, ज्ञान और आनन्द के महासिन्धु हैं, सर्वलोक में प्रसिद्ध हैं, पूर्ण हैं, दयासागर हैं, अत्यन्त करुणामय हैं, भक्तों को अभय प्रदान करने वाले हैं, और कैवल्य मोक्ष के दाता हैं, ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप निरामय स्वयंज्योति गुरु गोरक्षदेव को नमस्कार है ॥ ७ ॥

मूढ ! त्वं बहु भाषसे किमनिशं ?, मौनं कुरुष्वाधुना,
भावज्ञः स गुरु हिं बोध जलधि, योगीन्द्रपूज्यो महान् ॥

चेतः सत्परिरक्षणेऽस्य नियमो, ज्ञातस्त्वया नो दृढः
सद्वृत्तं सदसंशयं तु भज तं, गोरक्षनाथं गुरुम् ॥८॥

हे मूढ़ ! क्यों व्यर्थ का प्रलाप करते हो, अब मौन हो जावो, क्योंकि वह गुरुराज ज्ञानसागर हैं, योगीन्द्रों से पूज्य हैं, महान हैं, सबके हृदय के भावों को जानते हैं। हे चित्त ! उस सत्य स्वरूप परम ज्योति की आराधना का दृढ़ नियम तुमने नहीं जाना है, उस सर्वसाक्षी संशय रहित परम गुरु गोरक्षनाथ का भजन करो ॥ ८ ॥

अस्य स्तवस्य रचनाविषये प्रयत्नं,
तं श्यामनाथकृतमार्यजना विदित्वा ॥
शृण्वन्ति भक्तिसहिता यदि वा पठन्ति,
ये ते विशुद्धमनसः स्वपदं लभन्ते ॥ ९ ॥

इस गोरक्षनाथाष्टक की रचना के विषय में योगी श्यामनाथ के प्रयत्न को जो सज्जन लोग जानकर भक्ति सहित पठन करते हैं, अथवा श्रवण करते हैं, विशुद्ध चित्त वाले वे लोग कैवल्यपद प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥

अनुवादक :—
योगी विष्णुनाथ,
देहरादून ।

नमो भगवते गोरक्षनाथाय

गोरक्षस्तुतिः

स्वर्गे गुप्तं, निवसति गुरुः, कुण्ठिता नारदाद्याः,
वेधा ध्याने, नियतकरणो, बद्धपद्मासनोऽसौ ।
वाणी वीणां, रणयति सदा, शेषमूर्ध्नि स्थिता भू-,
रन्यो गाथां, कथयतु कथं, नाथ ! सर्वार्थगान्ते ? ॥१॥

पृथ्वी वेदी, परिधिरुदधि, ऋत्विजः पद्मजाद्याः,
इध्मं ग्रीष्मः, शरदपि हविः, प्राज्यमाज्यं वसन्तः ।
वर्षा मेध्या,वभृथसवनं, दक्षिणास्ते पुमर्थाः,
कालो यष्टा, यजति सततं, त्र्यक्षगोरक्षनाथम् ॥२॥

भूमी पादौ, गगनमुदरं, मेरुदण्डः सुमेरु-,
र्वस्त्रं सिन्धु, र्वदनमनलो, नासिका नाकलोकः ।
वायुः प्राणाः, श्रुतिरपि दिशो, लोचने चन्द्रसूर्यौ,
धर्मो मूर्धा, धरति निखिलं, स्थूलगोरक्षकायः ॥३॥

संसाराब्धे, स्तरणतरणिं, मज्जतां सज्जनानां,
सिद्धाराध्यं, सुरमुनिनुतं, मोक्षलक्ष्मीनिवासम् ।
भूपालानां, बकुलमुकुलै, मौलिमाल्यैश्च लाल्यं,
वन्दे वन्द्यं, प्रणतशरणं, दक्षगोरक्षपादम् ॥४॥

काव्ये योषा, नखमुखशिखा, मध्यलेखाप्रपञ्चः,
सांख्यादीनां, प्रकृतिविषमा, पद्धति र्वादजालैः ।
श्रौतस्मार्तं मतमपि मिथो, नैकमत्यं प्रयाति,
शान्तिभ्रान्तिं, जहि जड़ ! मनोऽ,न्यत्र गोरक्षपद्धयाम् ।५।

विश्वेदेवा, दश दश दिशो, दीर्घमायु र्दिशन्ति,
चिन्तां चिन्ता, मणिरवति सा, कामधेनु र्धिनोति ।
दिव्या दिव्यां, दृशमसदृशीं, कल्पते कल्पवृक्ष-,
स्तस्मिन् यस्मिन्, क्षिपसि सुदृशं, साक्षिगोरक्षनाथ ! ॥६।

औदासीन्यं, भवति भवतः, स्वार्थमालोक्य पुंसो,
दारागारा, त्मजमुखसुखा, दाशु वैराग्यमेति ।
निर्विण्णात्मा, न वसति गृहे, याति संन्यस्य धीरो,
योगारूढोऽ,ञ्चति तव पदं, साक्षिगोरक्षनाथ ! ॥७॥

खे वातेऽग्नौ, पयसि धरणौ, कामचाराः प्रशान्ता,
आत्मक्रीडाः, सदयहृदया, योगिनो निष्कषायाः ।
त्रैकालज्ञाः, करतलगतं, लोकमालोकयन्तः,
सम्पद्यन्ते, तव पदमर्मी, साक्षिगोरक्षनाथ ! ॥८॥

गुर्वीमुर्वीं, वहति शिरसा, शेषनागो मनस्वी,
धत्ते धीर, स्तमथ कमठो, लीलया पृष्ठनिष्ठम् ।
कुक्षौ सूक्ष्मं, तमपि धरते, कूर्मराजं पयोधिः,
सोऽयं पादा, म्बुजयुगरसो, नाथ ! ते ऽनन्तमूर्ते ! ॥९॥

पृथ्वीनारा,यणकुलगुरो. गौरवं केन गम्यं, ?
गोरक्षाद्रेः, सुरुचिरगुहा,गर्भवासोत्सुकस्य ।
लेभे प्राज्यं, तव करुणया, नाथ ! गोरक्षराज्यं,
पृथ्वीनारा,यण इति नृपो. दक्षगोरक्षवीरः ॥१०॥

सुरावासो मेरु, र्जलनिधिरयं मन्दरहतः,
स भानुः स्वर्भानो, स्त्रसति मदनोऽप्यङ्गविकलः ।
न धैर्ये गाम्भीर्ये. महसि सुषमायां च समता,
स्वयं गोरक्ष ! त्वं, जयसि सकलैरुज्ज्वलगुणैः ।११।

क्व मानवदृशो र्गति, र्दशशती दृशां शक्रगा,
शशाक न विलोकितुं, विहितलोक ! गोरक्षक ! ।
अशेषजगदात्मकं, तव वपुः स शेषः कथं,
सहस्रयुगतो दृशा, मपि चिदात्मकं पश्यतु ? ॥१२॥

सनकजनकमुख्या, ब्रह्मराजर्षय स्ते,
यमनियमसमाधीन्, भावयन्त शिवराय ।
शिव ! शिवपदमापु, स्त्वयक्षगोरक्षनाथ !,
कथमथ मतिमन्दा, वादिनो वेदिनस्ते ? ॥१३॥

श्रीगोरक्षस्तुतिं चक्रे, योगी नरहरिः कृती ।
पठन्प्रातरिमां भक्त्या, सम्प्राप्नोति समीहितम् ॥१४॥

स्वस्त्यस्तु

———

ॐ

नमः श्रीनाथपादुकाभ्याम्

❀ गोरक्षस्तोत्रराजः ❀

ॐ अस्य श्रीगोरक्षनाथस्तोत्रमन्त्रस्य विष्णु ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीगोरक्षनिरञ्जनो देवता। विमला शक्तिः। धर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः।

आकाशमन्दिरं चैव, तारारत्नैश्च मण्डितम्।
तस्य मध्ये स्थितो नित्यं, वराभयकराम्बुजः ॥१॥
निरञ्जनो निराकारो, निर्विकल्पो निरामयः।
अगम्योऽगोचरोऽलक्ष्यो, गोरक्षः सिद्धवन्दितः ॥२॥
कौपीनी च परध्यानी, तप्तकाञ्चनसन्निभः।
ध्येयः शिवः परो देवो, जटामुकुटमण्डितः ॥३॥
चिन्तामणिः पुमर्थानां, चन्द्रार्काग्नित्रिलोचनः।
सिद्धगन्धर्वयक्षेड्यो, देवर्षिगणसेवितः ॥४॥
विमला वामभागे च, निजा शक्तिः परात्मिका।
एवं ध्यात्वा शिवं योगी, बद्धसिद्धासनः सदा ॥५॥
इदं स्तोत्रं पठेन्नित्यं, सर्वसिद्धिफलप्रदम्।
श्रीगोरक्षस्तोत्रराजं, दुर्लभं भुवनत्रये ॥६॥

देवासुरमनुष्याश्च, न जानन्ति महीतले ।
सम्यग्ज्ञात्वा स्तुतो देवः, सर्वकामप्रदायकः ॥७॥
श्रीगोरक्ष ! नमस्तुभ्यं, नमस्तुभ्यं सदाशिव ! ।
सम्पूर्णाय नमस्तुभ्यं, नमो लक्ष्मीप्रियाय ते ॥८॥
सर्वेषामेव जन्तूनां, पापपुण्यविपाकदः ।
परं ब्रह्म परं धाम, श्रीगोक्ष ! नमोऽस्तुते ॥९॥
गकारो गुणसंयुक्तो, रकारो रूपलक्षणः ।
क्षकारेणाक्षयं ब्रह्म, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१०॥
ब्रह्मणां च परं ब्रह्म, रुद्रादीनां शिरोमणिः ।
त्रैलोक्यं निर्मितं येन, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥११॥
क्षमाधारी जितक्रोधः, सन्तोषी विजितेन्द्रियः ।
धर्माधर्मपरित्यागी, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१२॥
ब्रह्मचारी सदाशुद्धः, कायकर्मी महातपाः ।
आशापाशो हृतो येन, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१३॥
ज्ञानी धर्मेषु यो लीनः, सत्यवादी दृढव्रतः ।
आत्मध्यानरतो नित्यं, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१४॥
शुभाशुभविनिर्मुक्तो, भावाभावविवर्जितः ।
निजभक्ते स्वयं दाता, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१५॥
नरलोके नराधीशो, नागलोके च नागराट् ।
देवलोके च देवेन्द्रः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१६॥

राजन्यानाञ्च यो राजा, महाराजो महेश्वरः ।
महीपति र्महीन्द्रश्च, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१७॥
समस्तरसभोक्ता यो, यः सदा भोगवर्जितः ।
सदा समरसो यश्च, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१८॥
हठयोगविधाता च, मत्स्यकीर्तिविवर्धनः ।
योगिभि र्मनसा गम्यः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥१९॥
रेचकः पूरकश्चैव, कुम्भक स्त्रोटक स्तथा ।
प्राणायाम श्चतुर्धा ते, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२०।
ब्रह्मादिश्चैव विष्णवादी, रुद्रादिश्च सदाशिवः ।
ज्योतिर्मयोऽनवच्छिन्नः श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ।२१॥
सिद्धानाञ्च महासिद्ध, ऋषीणां च ऋषीश्वरः ।
योगिनाञ्चैव योगीन्द्रः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२२॥
पीठादीनां महापीठं, शिवादीनां महाशिवः ।
मन्त्रादीनां महामन्त्रः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२३॥
विश्वतेजो विश्वरूपं, विश्ववन्द्यः सदाशिवः ।
विश्वनामा विश्वनाथः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२४॥
सर्वगुणो गुणाभावो, निर्गुणश्च गुणास्थितः ।
साकारो वा निराकारः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२५॥
अनन्तलोकनाथश्च, नाथनाथशिरोमणिः ।
सर्वनाथसमाराध्यः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२६॥

विश्वोत्पत्तिकरश्चैव, विश्वेषां प्रतिपालकः ।
विश्वसंहारकर्ता च, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२७॥
उत्पत्तिस्थितिसंहार,कारिणे क्लेशहारिणे ।
सर्वाधारस्वरूपाय, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२८॥
पिण्डब्रह्माण्डमध्ये च, भुवनानि चतुर्दश ।
सर्वत्र व्यापको नाथः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥२९॥
न जानामि कुलं गोत्रं, वर्णावर्णविवर्जित ! ।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपोऽसि, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३०॥
नोत्पत्तिर्न लयो नास्ते, विकारो न च बन्धनम् ।
सदा समरसा वृत्तिः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३१॥
न माता न पिता चैव, न ते बन्धुः सहोदरः ।
अजः स्वयम्भूः सर्वात्मा, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३२॥
अदृश्यं दृश्यते नाथ !, अश्राव्यं श्रूयते सदा ।
त्वत्कृपालेशमात्रेण, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३३॥
सर्वत्र व्यापकः सूक्ष्मो, जीवरूपी महेश्वरः ।
सर्वेन्द्रियमयो नाथ !, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३४॥
चन्द्रादीनां तथा शैत्यं, सूर्यादीनां त्वमुष्णता ।
सर्वसारस्वरूपोऽसि, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३५॥
उत्तमं मध्यमं नीचं, त्वया सर्वं विनिर्मितम् ।
यथैवाग्निः सर्वरूपः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३६॥

अण्डजस्वेदजोद्भिज्ज, जेरजानां त्वमुद्भवः ।
अनन्तकोटिजीवानां, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तु ते ॥३७॥
वायुस्त्वं पञ्चरूपेण, प्राणिनां देहधारकः ।
स्वयं सर्वमयो नाथः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥३८॥
शून्यानां च परं शून्यं, परेषां परमेश्वरः ।
ध्यायताञ्च परंधाम, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तु ते ॥३९॥
एकाकी वर्तते नित्यं, भवपाशविवर्जितः ।
परं ब्रह्माक्षरं ज्योतिः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तु ते ॥४०॥
स्वर्गेषु पूज्यते दैवै, मर्त्यलोकेषु मानवैः ।
पाताले नागलोकैश्च, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥४१॥
त्रिनेत्र स्त्रिपुराराति, स्त्रिवेद स्त्रिजगत्पतिः ।
त्रयीवेद्य स्त्रिदेवात्मा, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥४२॥
सिद्धाम्नायसमाम्नाता, सिद्धाम्नायैकसिद्धिदः ।
सिद्धसङ्घैः सदा सेव्यः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥४३॥
तेजःपुञ्जः स्वयं देवो दीपो, दीप्तिमतामपि ।
सर्वस्वान्तःस्थितं ज्योतिः, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तुते ॥४४॥
सर्वासां जीवजातीनां, पापपूण्यैकसाक्षिणे ।
शुभाशुभफलाध्यक्ष !, श्रीगोरक्ष ! नमोऽस्तु ते ॥४५॥
श्रीगोरक्षस्तोत्रराजः, स्वयं कृष्णेन निर्मितः ।
जपतां भक्तिभावेन, सर्वसिद्धिविधायकः ॥४६॥

शिवस्तोत्रं विष्णुकृतं, ब्रह्मणा पठितं पुनः ।
ये पठन्ति सदा भक्त्या, ते लभन्ते समीहितम् ॥४७॥
इदं स्तोत्रं जपेन्नित्यं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
धनं पुत्रांस्तथा दारां, ल्लभते नात्र संशयः ॥४८॥
मनसा कर्मणा वाचा, स्तोत्रं यः पठते नरः ।
उद्धरे त्सप्त गोत्राणि, कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥४९॥
धनवा ञ्जायते वंशे, स्तोत्रं यस्य हृदि स्थितम् ।
जन्मजन्मकृतं पापं, नाशमायाति सत्वरम् ॥५०॥
दर्शनं लभते साचा, च्छ्रीनाथस्य जस्पंतवम् ।
भूर्जपत्रे लिखेत्स्तोत्र, मष्टगन्धेन भक्तितः ॥५१॥
धारयेत्कण्ठमध्ये च, यमलोके न पीड्यते ।
स्तोत्रराजं जपे त्प्रात, र्यत्स्वयं हरिणोदितम् ॥५२॥
गोरक्षमक्षयं देवं, मनोवाचामगोचरम् ।
सिद्धनाथं सिद्धसेव्यं, लभते नात्र सशयः ॥५३॥

इति श्रीकल्पद्रुमतन्त्रे श्रीकृष्णविरचितः

श्रीगोरक्षनाथस्तोत्रराजः

सम्पूर्णः

———

नमः श्रीनाथाय परमेश्वराय

गोरक्षयक्षाष्टकम्

विस्मृत्य नाथ ! महिमानममुं त्वदीयं,
जित्वा सुरा असुरलोकमतीव दृप्ताः ।
ज्ञात्वा चकर्थ करुणाकर ! तानदर्पान्,
गोरक्षयक्ष ! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥१॥

हे यक्षरूपधृतगोरक्ष ! किसी समय अघटित-घटना-घटक आपके महिमा के प्रभाव को न जानकर आपही की अद्भुत शक्ति का चमत्कार-रूप असुरपराजय को स्ववीर्य में पर्यवसित माननेवाले इन्द्रादि सभी देव अतीव दर्पोद्धत हुए । हे करुणामय ! आपने क्षण भर में इन्द्रादि देवों के दर्प का नाश किया, यह दुरक्षपक्ष (दुष्टेन्द्रियवशवर्तित्व) हमको भी कहीं न हो ज़ाय इसीसे आप हमें बचावें ।

कल्पान्तभास्कर-सहस्ररुचं दधान,-
स्तेषां तदा त्वमभवः प्रकटः पुरस्तात् ।
ज्ञातो न तैश्चकितबुद्धिभिरिद्धरोचि,-
गोरक्षयक्ष ! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥२॥

हे गोरक्ष ! हे यक्ष ! प्रलयकालिक सहस्र आदित्यों का तेज लेकर आप उन अभिमानी देवों के समक्ष प्रकट हुए ; किन्तु आपकी प्रदीप्त

रुचि से चकित बुद्धिवाले देवों ने नहीं जाना, औरों की तो बात क्या! हे ज्योतिर्मय! दुष्ट इन्द्रियों से एवं खल-समाज से हमारी रक्षा करो।

देवप्रयुक्तदहनो न शशाक दग्धुं,
निर्दिष्टमष्टवपुषा भवता तृणान्तत्।
व्रीडावनम्रवदनोऽभिययौ स देवान्,
गोरक्षयक्ष! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥३॥

अग्नि-देवताओं के भेजने पर आपकी शक्ति की इयत्ता लेने को आया, किन्तु आपने उसकी कोई विशेष परीक्षा नहीं ली, एक लघुतुच्छ तृण को भी वह अपनी समग्र शक्ति से नहीं जला सका, पराजित होकर परावृत्त हुआ। हे यक्षस्वरूप गोरक्ष! ऐसे आप हमारी खल-समाज और दुष्टेन्द्रिय वर्ग से रक्षा करें।

वायुस्तथैव भवतः सन्निधं समेतः,
स्थानात्तृणं चलयितुं चलितोऽप्यशक्तः।
बद्ध्वाञ्जलिं निववृते त्वयि देवदेवे,
गोरक्षयक्ष! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥४॥

इसी प्रकार वायुदेव भी आया आपने उसके सम्मुख भी वही एक तृण रखा, उड़ाने की आज्ञा दी, नहीं उड़ा सका। विपरीत फल हुआ, उसी की शक्ति का अपमान हुआ; हाथ जोड़कर परावृत्त हुआ, हे गोरक्षरूप यक्ष हमारी दुष्टों से तथा दुष्ट चञ्चल इन्द्रियों से रक्षा करो।

इत्थं तयो वितथयोर्मघवामदेन,
ज्ञातुं तवान्तिकमगान्महिमानमारात्।

अन्तर्दधेऽथ भवता मदमर्दनार्थं,
गोरक्षयक्ष ! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥५॥

इस प्रकार अग्नि और वायु के व्यर्थ होने पर इन्द्र भी आपकी महिमा को जानने के लिए आया, औरों को दर्शन तो मिला था, इन्द्र का मद तो इतने से ही चूर्ण हो गया—उसको आपके दर्शन भी नहीं हुए, उसके पूर्व ही अन्तर्धान हो गये। हमलोगों को भी कहीं ऐसा अभिमान न हो, अतः हे यक्षरूप गोरक्ष ! हमारी इस दुष्टेन्द्रिय प्रवृत्ति से रक्षा करो।

मन्दाक्षमन्दमतिमिन्द्रमथान्तरिक्षे,
साक्षादुमाह तव यक्षवपुः परोक्षम्।
ब्रह्मेदमस्य विजये विजयः सुराणां,
गोरक्षयक्ष ! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥६॥

दर्शन आपके न मिलने से इन्द्र को बहुत चिन्ता हुई, उसी समय आकर जगदम्बा महामाया उमा ने इन्द्र को निज अमृत वचन द्वारा प्रबोधित किया – 'यह साक्षात् ब्रह्म था जो तेरी दृष्टि में न आ सका, ब्रह्म ने ही असुरलोक को जीता था। अभिमानवश उसकी महिमा को न जान सके'। हे यक्षरूप गोरक्षनाथ ! जब इन्द्र की यह दशा है, तब हमारी क्या गणना ? अतः ऐसे दुष्टेन्द्रिय पक्षपात व्यामोह को नष्ट करें।

तस्मादमी दिविषदो महिता मनुष्यै,—
स्तेष्वग्निवायुहृदय स्त्रिषु तेषु शक्रः।
येनोत्तरोत्तरमलक्षि तवाक्षरत्वं,
गोरक्षयक्ष ! भुवि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥७॥

उत्तरोत्तर दर्शन प्रकर्ष के कारण मनुष्यों की अपेक्षा देवता, देवों में भी अग्नि, वायु, इन्द्र, इनमें भी इन्द्र अधिक महिमा के योग्य हैं। क्योंकि जगदम्बा ने साक्षात् आकर बोध कराया, हे यक्षरूपधारी गोरक्ष। इसका मूल उक्त अभिमान का आश्रय हमको न हो, अतः हमारी दुष्टेन्द्रिय प्रवृत्ति को मद से बचावें।

आदेश एष इति या श्रुतिभि विंमृष्टा,
देवैश्च या तडिदिव क्षणदृष्टनष्टा।
स्वान्तेऽभ्युदेतु तव सा तनुरस्मदीये,
गोरक्षयक्ष ! शुचि रक्ष दुरक्षपक्षात् ॥८॥

हे गोरक्षयक्ष ! हमारी दुष्टेन्द्रिय वृत्ति को नष्ट करो और हमारे अन्तस्तल में उस मूर्ति का आविर्भाव हो जिस मूर्ति ने विद्युत् के तुल्य समस्त देवों को चकित किया था। वह आपकी मूर्ति अनुपम ब्रह्म का आदेश है, यह उपनिषदों का सार है।

क्षोणिक्षेमकरं क्षयक्षयकरं, क्षमानाथदीक्षाकरं,
प्रेक्षालक्ष्यमलक्ष्यलक्षणपरं, शिक्षाक्षमं क्षान्तिदम्।
दक्षंकल्मषपक्षभक्षणविधौ, गोरक्षयक्षाष्टकं
ये प्रत्यक्षफलं पठन्ति सुधिय, स्ते मोक्षलक्ष्मीक्षमाः ।९।

यह गोरक्षयक्षाष्टक अतीव गम्भीर है इसको अर्थपूर्वक तदारूढ़ होने से मानव को अवश्य मुक्ति मिलेगी, कामनापूर्वक इसका अध्ययन पापों का नाश और विभिन्न रुचिवालोंको तदनुसार फल देगा।

व्यक्तं ज्योतिरुदेति यन्नियमिनां, साक्षात्समाधौ परं,
यद्यक्षं प्रकटं पुरः क्रतुभुजा,माश्चर्यचर्यौजसा।

तद्गोरक्षपदाभिधानममृतं, ब्रह्म प्रयान्त्येव ते,
ये नित्यं नियताः पठन्ति कृतिनो, गोरक्षयक्षाष्टकम् ।१०।

इति श्रीगोरक्षयक्षाष्टकं

सम्पूर्णम्

जिस परं ज्योति का दर्शन सिद्धयोगियों को समाधि में होता है, जो तत्त्व सर्व देवों के समक्ष अपूर्व आश्चर्य रूप से प्रकट हुआ, जो तत्त्व सूर्य-वेद-पृथ्वी-भारती-इन्द्रिय-गौ आदि पदार्थों का रक्षक है, वह तत्त्व गोरक्षयक्षाष्टक के अध्ययन से विद्वानों को प्राप्त होगा ।

षडभ्राभ्राक्षिवैक्रान्तं, नैपालेऽभ्रर्षिखेन्दुगे ।
गोरक्षयक्षाष्टकं तत्, स्पष्टं व्याचष्ट शङ्करः ॥१।

अयन्त ! गोरन्त ! रन्त !

गोरक्षरक्षास्तवः

जय लोकहिते कृताकृते !
 जय गोरक्षगुरो ! गिरीश्वर ! ।
जय जन्हुसुताशिखामणे !
 जय शीतांशुकलामलानन ! ॥१॥

विकलः किल बालकोऽबलः,
 समवर्तिव्यथितस्तपश्चरन् ।
तव लोचनगोचरं गतः,
 सततं नन्दति नन्दिकेश्वरः ॥२॥

भवदङ्घ्रि-सरोज-सेविना,
 ननु गोरक्ष ! वलक्षकीर्तिना ।
कति वारमवेक्षितो लयो,
 जगतस्तेन मृकण्डुसूनुना ॥३॥

भवता भवतापहारिणा,
 हरिणाक्षीगुणबद्धमानसः ।

नृपभर्तृहरिः समुद्धृतो,
यमतोऽसौ यमतो विराजते ॥४॥

तव पूज्यपदाब्जसङ्गिना
जननीवागनुवर्तिनाऽमुना ।
जितकालभिया सनाथ्यते,
नृपगोपीविधुनाऽधुनापि भूः ॥५॥

त्वरितं त्वदवेक्षणात्प्रभो !
प्रथयन् कीर्तिलतां जगत्त्रये ।
चिरकूपगतो नृपात्मजो,
गुणपूर्णोऽमृतपूर्णतां ययौ ॥६॥

त्रिपुरस्मरदाहिनस्तव,
चरितं चारु सुराङ्गनाजनात् ।
स निशम्य हरिर्दशोऽखिलाः,
सहसोन्मील्य निमीलयत्यहो ! ॥७॥

विधिविष्णुविवादभेदने,
भवताविष्कृतमद्भुतं वपुः ।
सहसा तमसावृतं मनो,
मम गोरक्ष ! विकाशयत्वदः ॥८॥

न भवतो भव ! तोषणमास्थितं,
नव-सुधा वसुधा न कृता गिरा ।
न च रमा चरमा समुपासिता,
नरहरेरहरेवमगाद्वृथा ! ॥९॥

इति श्रीयोगिनरहरिनाथविरचितो

गोरक्षरक्षास्तवः

संपूर्णः

नमोभगवते शिवाय गोरक्षाय

गोरक्षधन्याष्टकम्

यतो माया माया,मयमिदमशेषं जनयति,
यतो वायु र्वाति, स्फुटमयमनन्तेऽम्बरतले ।
यतो विश्वं वैश्वा,नर इदमुदर्चि र्विनयते,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥१॥

यतो भास्वान् भास्वान्, नियमयति कालं क्षणमुखं,
यतश्चन्द्रश्चन्द्रः, पुलकयति पृथ्वीं सजलधिम् ।
यतो भासो भान्ति, त्रिभुवनभृतो भान्ति गगने,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥२॥

यतोऽयं पर्जन्यो, नियतसमये मुञ्चति जलं,
समुद्रो यन्मुद्रां, वहति परितो मुद्रितमहिः ।
यतः पृथ्वी पृथ्वी, स्थिरपरिकरा प्राणिभरणे,
न गोरक्षदन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥३॥

यतः काले काले, सकलऋतवो बिभ्रति फलं,
यतो देवा देवा,धिपतिसहिता अध्वरभुजः ।

यदालोकाल्लोकः, कलयति सदालोकमखिलो,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥४॥

अवन्तीभर्तारं, नृपतिहरिभर्तारमवतो,
नृपं गोपीचन्द्रं, जगति नृपचन्द्रं विदधतः ।
अपूर्णाङ्गं पूर्णं, सदवयवपूर्णं पृडयतो,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥५॥

पदे प्राप्तं वप्पं, प्रकटगरिमाणं गमयतो,
महीमानं मानं, परममहिमानं विनयतः ।
नृपं पृथ्वीनारा,यणमधिमहीपं प्रथयतो,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥६॥

यतो भूतं भव्यं, भवदिति भिदां याति समयो,
यतो जाग्रत्स्वप्ना,वनुभवति सुप्तिं जगदिदम् ।
यतोऽमात्रान्मात्रा,त्रयमखिलवेदादिकमतो,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥७॥

यतो लोकालोका,वलिवलितलोकावलिरियं,
स्थिता स्थाने स्थाने, स्थिरचरशरीरिस्थितिकृते ।
कथां तथ्यां पथ्यां, कथयति यदीयां भुवि जनो,
न गोरक्षादन्यो, जगदवनधन्यो विजयते ॥८॥

धन्यं तस्य कुलं कला च सकला, धन्याऽथ धन्यो गुरु,-
र्धन्या तज्जननी तदीयजनको, धन्योऽपि धन्या धरा।
धन्यो बन्धुजनः श्रुतिस्मृतिधनं, धन्यं च धन्योऽधिपो,
धन्योऽसौ प्रतिवासरं पठति यो, गोरक्षधन्याष्टकम् ॥९॥

नरहरियोगिविरचितं

गोरक्षधन्याष्टकं

सम्पूर्णम्

नमो भगवते गोरक्षाय ज्योतिर्मयाय

गोरक्षरक्षावलिः

अक्षं क्षोदितदक्षं, लक्ष्यालक्ष्यं क्षितिक्षितां मोक्षम् ।
साक्षाद्दीक्षणदक्षं, यक्षं गोरक्षकं वन्दे ॥ १ ॥

योगोपदेशहेतो, र्यो गोरक्षाह्वयं वपु र्धृत्वा ।
रक्षति तं क्ष्मानाथान्, मृत्यो र्मृत्युञ्जयं वन्दे ॥२॥

योगी हारीतनामा, शिष्यो यस्यानुशासनै र्बालम् ।
पालयति स्म विभग्नं, गोरक्षं तं शिवं वन्दे ॥३॥

यश्चैकलिङ्गनाथो, हारीताराधितोऽन्धकध्वंसी ।
वप्पं ररक्ष मार्गे, गोरक्षं तं स्फुटं वन्दे ॥४॥

बप्पारावलवीरे, दत्वा खड्गं वराशिषाऽऽभूष्य ।
चक्रे चक्रेशत्वं, यस्तं देवं मुदा वन्दे ॥५॥

म्लेच्छोच्छेदनदीक्षा, क्षोणीभर्तु र्गिरौ प्रतापस्य ।
येन कृता कृपयामुं, गोरक्षेशं गुरुं वन्दे ॥६॥

नित्याराधितपादो, विक्रममौलिस्रजा त्रिकूटाद्रौ ।
स्वप्ने ददौ वरं यो, गोरक्षं तं हरं वन्दे ॥७॥

दातुं गोरक्षराज्यं, गोरक्षोत्केऽभव त्तपयोभिक्षुः ।
द्रव्येशे यः कुमारे, गोरक्षं तं नटं वन्दे ॥८॥

रामोग्रशक्तिसेव्यो, लक्ष्मणलक्ष्योऽदिशच्छुभोदर्काम् ।
य श्चक्रवर्तिलक्ष्मीं, गोरक्षं तं मृडं वन्दे ॥९॥

यः पृथ्वीपतिसंज्ञे, पृथ्वीं पृथ्वीपतौ प्रथयति स्म ।
प्रथितः प्रमथौघनाथो, गोरक्षं तं सदा वन्दे ॥१०॥

यन्नैवेद्यनिषेवी, कुष्ठादीनामभूदपाकर्ता ।
नरभूपालभूपालो, गोरक्षं तं शिवं वन्दे ॥११॥

कालीलालितबाले, पृथ्वीनारायणे दधिव्याजात् ।
यः साम्राज्यविधाता, गोरक्षं तं भवं वन्दे ॥१२॥

यद्दत्तखड्गहस्तः, क्वापि परास्तो न पृथ्विनाथोऽसौ ।
पृथुतुल्यः पृथुकीर्ति, गोरक्षं तं शिवं वन्दे ॥१३॥

भद्रा यस्य च मुद्रा, साद्रिसमुद्रां द्रुतं विमुद्रय क्ष्माम् ।
राजति राजसमाजे, गोरक्षं तं शिवं वन्दे ॥१४॥

यद्ध्वजराजद्ध्वजिनी, यं रणसज्जाविधौ सकृ न्नत्वा ।
न नमति शत्रुपुरस्ताद्, गोरक्षं तं मुहु र्वन्दे ॥१५॥

यत्पादाब्जविराज,न्मौलि र्मान्यो महीभुजां भूपः ।
न पतति विपक्षपादे, गोरक्षं तं गुरुं वन्दे ॥१६॥

ये नित्यं प्रपठन्ति भक्तिसहिता, गोरक्षरक्षावलिं,
चन्द्रार्कान्वयभूतभूपतिशिरो,रत्नायिताङ्घ्रिद्वयः ।
रक्षामक्षतशक्तिरार्द्रहृदयो, गोरक्षनाथः क्षणा-,
त्तेषामेष करोति भीतमनसां, साम्राज्यलक्ष्मीप्रदः

नरहरियोगिविरचिता
गोरक्षरक्षावलिः
सम्पूर्णा

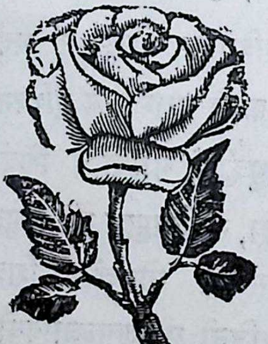

नमःशिवाय गोरक्षाय

श्रीपात्रदेवताष्टकम्

युगे युगे योगिजनैरुपासिता, कुले कुले स्वेष्टतया सदाञ्चिता ।
गृहे गृहे भक्तजनैः समर्चिता, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

सुरे सुरे शक्तितयाविराजिता, पुरे पुरे राजकुलैः प्रतिष्ठिता ।
गिरौ गिरौ पादुकयाऽभिपूजिता, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

स्थले स्थले तीर्थचयं वितन्वती, पदे पदे स्वापचितिं विचिन्वती ।
जने जने दृष्टिसुधां विवृण्वती, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

क्षणे क्षणे क्षोणिशिवाय जाग्रती, कणे कणेऽप्यापि महांसि बिभ्रती
रणे रणे भक्तजयं प्रशासती, पुनातु चित्तं ममं पात्रदेवता ॥

क्षमा क्षमायां सलिलेषु माधुरी, धनञ्जये ज्योतिरथाऽनिले बलम् ।
खोऽम्बरे यन्महसा चकास्ति सा, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

ससिद्धगन्धर्वसुरर्षिकिन्नरै, र्नरैः समाराध्यपदा निरन्तरम् ।
परात्परा योगविदामुपाश्रया, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

शिवोऽव्ययो योगकृते महीतले,ऽवतीर्य गोरक्षतयोपलक्षितः ।
परीक्ष्य पात्रेषु जनेष्ववस्थितः, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

महीभृतां मौलिकृताङ्घ्रिपङ्कजा, महीभृतां मौलिकृताङ्घ्रिपङ्कजा।
महीजलाद्यष्टविशिष्टविग्रहा, पुनातु चित्तं मम पात्रदेवता ॥

योऽनेन पात्रदेवस्य, गोरक्षस्य महेशितुः ।
स्तवेन वन्दनां कुर्या,च्चित्तं तस्य प्रसीदति ॥ ९ ॥

इति श्रीशङ्करनाथयोगिविरचितं

पात्रदेवतास्तोत्रं

सम्पूर्णम्

नमः श्रीगुरुनाथाय शम्भवे

गुरुपादुकास्तोत्रम्

ॐ ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे, नित्यलग्नमवदातमद्भुतम् ।
कुण्डलीकनककाण्डमण्डितं, द्वादशार्णसरसीरुहं भजे ॥१॥
तस्य कन्दलितकर्णिकापुटे, क्लृप्तरेखमकथादिरेखया ।
कोणलक्षितदलक्षमण्डली, भावलक्ष्यमबलालयं भजे ॥२॥
तत्पुटे पटुतडित्कडारिम, स्पर्धमानमणिपाटलप्रभम् ।
चिन्तयामि हृदि चिन्मयं वपु, र्नादबिन्दुमणिपीठमण्डलम् ॥
ऊर्ध्वमस्य हुतभुक्शिखासखं, चिद्विलासपरिबृंहणास्पदम् ।
विश्वघस्मरमहश्छटोत्कटं, व्यामृशामि युगमादिहंसयोः ॥४॥
तत्र नाथचरणारविन्दयोः, कुङ्कुमासवझरीमरन्दयोः ।
द्वन्द्वमिन्दुमकरन्दशीतलं, मानसं स्मरति मङ्गलास्पदम् ॥५॥
पादुकापञ्चकस्तोत्रं, पञ्चवक्त्राद्विनिर्गतम् ।
षडाम्नायफलप्राप्तं, प्रपञ्चे चातिदुर्लभम् ॥ ६ ॥
निषक्तमणिपादुकं, नियमिताघकोलाहलं,
स्फुरत्किसलयारुणं, नखसमुन्मिषच्चन्द्रिकम् ।
परामृतसरोवरो,दितसरोजरोचिष्णुकं,
भजामि शिरसिस्थितं, गुरुपदारविन्दद्वयम् ॥७॥

नित्यानन्दे, निरुपमपदे, निर्मले निर्विकल्पे,
व्योमातीते, परमचरणे, तेजसां मूलभूते ।
सम्यक्चित्त,प्रविलयवशा,त्स्वानुभूत्यैकगम्यं,
दिव्यं तेजः, स्फुरति सहसा, यस्य योगी स एव ॥८॥
छित्वा कर्मनिबन्धनं निरवधि, प्लुष्ट्वा विकल्पात्मकं
कारागारमनेकसंशयरिपून्, हत्वा कृपासेचनैः ।
प्रक्षाल्य प्रचुरं मलत्रयमिदं, संस्थापितः स्वे पदे,
येनाहं गुरुरूपिणे भगवते, तस्मै नमः शम्भवे ॥९॥

इति श्रीसिद्धयामले पञ्चवक्त्रविनिर्गतं गुरुपादुकास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अथ टीका लिख्यते —

अहं द्वादशार्णसरसीरुहं भजे सेव इत्यर्थः। क्रियया कर्तुरुपस्थितिः। द्वादशार्णम्=हसखफ्रें हसक्षमलवरयूमिति द्वादशाक्षरविशिष्टं द्वादशपत्रम्। कुत्र ? ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहोदरे=ब्रह्मरन्ध्रं त्रिकोणवक्त्रं कर्णिकामध्यस्थं विसर्गस्थानं द्विबिन्दुनिलयं तद्विशिष्टं सरसीरुहमधोमुखसहस्रदलपद्मम्। तदुदरे कर्णिकावस्थितत्रिकोणाभ्यन्तरे नित्यलग्नं सर्वदावस्थितम्। तत्पुनः किम्भूतम् ? अवदातं शुक्लम्। पुनः किं भूतम् ? अद्भुतमाश्चर्यं ज्योतिर्मयत्वात्। पुनः किम्भूतम् ? कुण्डलीकनककाण्डमण्डितम्=अधोमुखचतुर्दलमूलाधारकमलकर्णिकामध्यत्रिकोणमध्यस्थाधोमुखरन्ध्रनीवारशूकवत् स्वयम्भूलिङ्गमुखस्यवाग्भवबीजमृणालतन्तूपमद्विमुखसर्पाकारविश्वजननी शक्तिस्तस्याःदण्डस्तेनमण्डितं भूषितमित्यर्थः। शक्तिः कुण्डलिनीति या निगदिता आईमसंज्ञेति नागभट्टः। वज्राख्या मेढ्रदेशात् शिरसि परिगता इति योगचिन्तामणौ। ब्रह्मरन्ध्रगमनपथरूपच्छिद्रं तस्य काण्डे मृणालरूपदण्डो वज्राभिधस्तस्य बाह्यमुखं

श्वासोच्छ्वासविभञ्जनार्थमधोवक्त्रकिञ्जल्कपुञ्जमूलपद्मम्, तन्मध्येपरिभावये द्विसलतातन्तूपमेयाकृतिमिति नागभट्टः ॥ १ ॥

अहमबलालयं भजे = अबला कामकला तस्या आलयं त्रिकोणपीठमित्यर्थः । कुत्र ? तस्य कन्दलितकर्णिकापुटे द्वादशदलं पद्मं कन्दं मूलं लाति गृह्णाति तद्विशिष्टायाः कर्णिकायाःपुटे सम्पुटे कन्दलितमितितारकादित्वादितच् । किं भूतम् ? अकथादिरेखयाङ्कृतरेखम् = अकारादिषोडशाक्षरेण ककारादिषोडशाक्षरेण थकारादिषोडशाक्षरेण रेखास्वरूपेणङ्कृता रेखा यस्य त्रिकोणस्य । तत्पुनः किं भूतम् ? कोणलक्षितहलक्षमण्डलीभावलक्ष्यम् = कोणेषु, अन्तस्त्रिकोणेषु लक्षितानां हलक्षाणां वर्णानां मण्डलीभावेन लक्ष्यं लक्षणीयम् ॥ २ ॥

अहं हृदि मनसि चिन्मयं वपुश्चिन्तयामि । ज्ञानमयं शरीरं द्वादशशब्दरूपमित्यर्थः । तत्पुटे तस्य त्रिकोणस्य मध्यसम्पुटे वपुः किं भूतम् ? पटुतडित्कडारिमस्पर्धमानमणिपाटलप्रभम् = उद्यत्पटुविद्युत्कपिलवर्णया प्रभया स्पर्धमानानां सदृशानां मणीनां पाटलप्रभेव प्रभा यस्य । तत्पुनः किम्भूतम् ? नादबिन्दुमणिपीठमण्डलम् = मणीनां पीठं मणिपीठं मणिपीठञ्च तन्मण्डलञ्चेति मणिपीठमण्डलं नादबिन्दू एव मणिपीठमण्डलं यत्र तत् ॥ ३ ॥

अस्य चिन्मयस्य शरीरस्य वाग्भवबीजस्योर्ध्वमादि हंसयोर्युगमहं व्यामृशामि चिन्तयामि । आङ् पूर्वो मृशधातुश्चिन्तार्थः । हंस इति अजपागायत्री ब्रह्मस्वरूपा चिन्मयी योगिनामुपास्येयम् । हमिति शिवः, सइति शक्तिः । एतादी सृष्टेः कारणत्वात् । जीवानां प्राणहारिणीव 'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः' । इति गोरक्षः । सर्वेषां जीवरूपो हंसः 'ध्यायेद्धिया निश्चलम् । स्वात्मानं निर्वातदीपनिभया हंसस्वरूपं बुध इतिनागभट्टः । ब्रह्मस्थाने तद्युगं ब्रह्मस्वरूपं प्रपञ्च-निष्प्रपञ्चव्यापकरूपत्वात् । हकारसकारयोरौपसन्धानिकशक्तित्वात् । नित्यंतद्द्वित्वमेव यथास्तनयोर्युग्ममिति चण्डी । तत्पुनः किंभूतम् ? हुतभुक्शिखासखं हुतभुजो वह्नेः शिखायाः सखा च हुतभुक्

शिखासखं राजादित्वात् । अग्निशिखातुल्यमित्यर्थः । पुनः किंभूतम् ? चिद्विलासपरिबृंहणास्पदम् = चितोऽनिर्वचनीयविलासानामद्भुतकान्तीनां बृंहणं वर्धनं तस्यास्पदं स्थानम् । अत्यन्तकान्तिवर्धनस्थानमित्यर्थः । पुनः किंभूतम् ? विश्वघस्मरमहश्छटोत्कटम् = विश्वभस्मकारिमहसश्छटाभिरुत्कटं जाज्वल्यमानम् ॥ ४ ॥

तत्र हंसपीठे नाथचरणारविन्दयोर्द्वन्द्वम्—अर्थान्मम मानसं स्मरति चिन्तयति । स्मृ चिन्तायाम् । नाथो गुरुः । तयोः किंभूतयोः कुङ्कुमासवझरीमरन्दयोः कुङ्कुममेवासवः कुङ्कुमासवो रक्त वर्णं परमामृतं तस्य झरी प्रवाहः स एव मरन्दो मकरन्दः पुष्परसो ययोः परमामृतसरस्य पुष्परसतुल्यता । किंभूतम् ? द्वन्द्वमिन्दुमकरन्दशीतलम्—इन्दोश्चन्द्रस्य मकरन्दः किरणामृतं तदिव शीतलमिन्दुकरकन्दशीतलमितिपाठे चन्द्रस्य करः किरण एव कन्दो मूलं तदिव शीतलम् । पुनः किं भूतम् ? मङ्गलं मोक्षस्तस्यास्पदं । मुक्तिप्रदमिति यावत् ॥५॥

अहं गुरुपदारविन्दद्वयं भजामि । किंभूतम् ? शिरसि स्थितं तटस्थलक्षणया शिरसि स्थितं चन्द्रमण्डले स्थितम् ? किं भूतम् ? निषक्तमणिपादुकम्—निषक्ता संपृक्ता मणिमयी पादुका यस्मिंस्तत् । पुनः किं भूतम् ? नियमिताघकोलाहलम् = नियमितः प्रशमितोऽघानां पायानां कोलाहलो येन यस्मिन् वा तत् । पुनः किं भूतम् ? स्फुरत्किसलयारुणम् – स्फुरद्भिः किसलयैः पत्रैररुणम् । किं वा स्फुरन्ति किसलयान्यरुणरागेण यत्र तदिति । सहस्रदलकमलस्य पत्रैररुणितच्छायया द्विगुणितरक्तवर्णमित्यर्थः । पद्मासनस्थितत्वाच्चक्रमूर्ध्नि सहस्रदलकमलम् । रक्तं सुधावर्षिणमिति पञ्चमीस्तवराजे । पुनः किं भूतम् ? नखसमुन्मिषच्चन्द्रिकम् – नखेभ्यः समुन्मिषन्ती चन्द्रिका यत्र तत् । नखा एव समुन्मिषच्चन्द्रका यत्र वा । हंसपीठे षोडशकलापूर्णे चन्द्रमण्डले वा गुरोरवस्थानात् । पुनः किं भूतम् ? परामृतसरोवरोदितसरोज-

रोचिष्णुकम्—परामृतसरोवरे समुदितसरोजवद्रोचिष्णुकं शुक्लं प्रकाशमानम् । चन्द्रस्य शुक्लत्वादमृतस्य शुक्लत्वम् । तद्धटकत्वात्पद्मस्य शुक्लत्वात् ॥६॥

स्तोत्रमिदं पञ्चवक्त्राद्विनिर्गतं शिवस्येति भावः। एतेन गायत्र्यर्थो दर्शितः। यथा चतुर्वेदप्रभुर्गायत्री महेश्वरवदनोत्पन्ना ब्रह्मस्वरूपा ब्रह्मविष्णुशिवप्रभृतीनां प्रतिपादिका तथेदं स्तोत्रं ब्रह्मस्वरूपं सर्वप्रतिपादकमेतदेव पञ्चवक्त्रविनिर्गतम्। पादुकापञ्चकं पादुकायाः पञ्चस्थानानि यत्र, अर्थात् गुरोः पादुकापञ्चकम्। किं भूतम् ? षडाम्नायफलप्राप्तम्=षडाम्नायानां फलस्य प्रापणं यत्र। भावे क्तः। के षडाम्नायाः ? तत्राह शिवस्य पञ्च वदनानि पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरोर्ध्वस्थानानि । ईशानस्थितमुखमेकमेतेन षण्मुखानि कार्तिकेयस्य षण्मुखप्रस्तावे व्यक्तीकृतानि । तदा सत्ययुगे शिवपार्वतीसंपादोऽपीतः के देवा=धर्मपरमार्थदातारः ? का देव्यो धर्मकामार्थमोक्षदात्र्यः ? तत्राह शिवः—पश्चिममुखेन नारायणवैष्णवराघवनारसिंहवाराहप्रभृतिचतुर्वर्गप्रदातारो मन्त्राः कथिताः सोपाध्यायाः स पश्चिमाम्नायः। दक्षिणमुखेन प्रासादादिदक्षिणामूर्तिप्रभृतिचतुर्वर्गप्रदातारो मन्त्राः कथिताः सोपाध्यायाः स दक्षिणाम्नायः । पूर्वमुखेन भुवनेश्वर्यन्नपूर्णामहालक्ष्मीसरस्वतीप्रभृतीनां मन्त्राः कथिताः सोपाध्यायाश्चतुर्वर्गप्रदातारः स पूर्वाम्नायः। उत्तरमुखेन कालीतारामहिषमर्दिनीत्वरिता (ललिता) जयदुर्गाशक्तिप्रभृतीनां मन्त्राः सोपाध्यायाः कथिताश्चतुर्वर्गप्रदातारः स उत्तराम्नायः। ऊर्ध्वमुखेन त्रिपुरेशीमहात्रिपुरभैरवीमहात्रिपुरसुन्दरीविद्याप्रभृतीनां मंत्राः सोपाध्यायाः कथिताश्चतुर्वर्गप्रदातारः स ऊर्ध्वाम्नायः। ईशानमुखेन सर्वमन्त्राणां स्थानासनमालानैवेद्यादिविद्याभेदानां मन्त्राः सोपाध्यायाः कथिताश्चतुर्वर्गप्रदातारः स ईशानाम्नायः। एते षडाम्नाया जाताः। तेषां यानि फलानि तेषां प्रापणं स्तोत्रेऽस्मिन्। पुनः किं भूतम् ? प्रपञ्चे=आब्रह्मस्तम्बपर्यन्ते चतुर्दशभुवनेऽतिदुर्लभम्। यदुक्तम्—

"द्वापरादौ युगे कल्पे, कवयो मानुषादिषु ।
आगमैः कल्पितै र्वत्स!, जनान् मद्विमुखान् कुरु ॥"

अस्यायमर्थः-द्वापरादौ द्वापरसमीपे कलियुये । आदिशब्दोऽत्र समीपवाची, द्वापराद्ययुगे तु श्रीकृष्णानुमत्या पूर्वाम्नायोक्तभुवनेश्वरीमन्त्रस्य धनञ्जयोपासितत्वात् । मानुषादिषु कलौ कलयांशेनोन्मत्तो भूत्वा तैर्नायिकादिसिद्धिप्रापकभूतडामरादिरूपैरागमैः कल्पितैर्वत्स! जनान् मद्विमुखान् कुरु । अन्यथा पश्चिमाम्नायोक्तक्रमेण गौतमीयसनत्कुमारीयतन्त्रप्रतिपादितोपासनाबाधाप्रतिपत्तिः स्यात् । तेनोत्तरोत्तरा सृष्टिः स्यादिति बृहत्सहस्रनामप्रस्तावे नारायणवाक्यं शिवं प्रति । एतद्वचनानुसारेण षडाम्नायोक्तोपासनाबाधां ये कुर्वन्ति ते मन्दबुद्धयः ॥ ७ ॥ श्लोकद्वयस्य नोपलब्धा टीका ।

इति श्रीदुर्गादासवाचस्पतिकृता गुरुपादुकास्तोत्र-टीका सम्पूर्णा

नमो गुरुचरणकमलेभ्यः

श्रीगुर्वष्टकम्

ब्रह्मस्थानसरोजमध्यविलस, त्स्फीतांशुपीठस्थितं,
स्फूर्जत्सूर्यरुचिं वराभयकरं, कर्पूरकुन्दोज्ज्वलम ।
श्वेतस्रग्वसनानुलेपनयुतं, विद्युद्रुचा कान्तया,
संश्लिष्टार्धतनुं प्रसन्नवदनं, वन्दे गुरुं सादरम् ॥१॥

मोहध्वान्तमहान्धविग्रहवतां, चक्षूंषि चोन्मीलयन्,
यश्चक्रे रुचिराणि तानि दयया, ज्ञानाञ्जनाभ्यञ्जनैः ।
व्याप्तं यन्महसा जगत्त्रयमिदं, तत्त्वप्रमोदोदयं,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥२॥

मातङ्गी भुवनेश्वरी च बगला, धूमावती भैरवी,
तारा च्छिन्नशिरोधरा भगवती, श्यामा रमा सुन्दरी ।
दातुं नो प्रभवन्ति वाञ्छितफलं, यस्य प्रसादं विना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥३॥

काशीद्वारवतीप्रयागमथुराऽयोध्यागयाऽवन्तिका,
मायापुष्करकाञ्चिकोशलपुरी, श्रीशैलविन्ध्यादयः ।

नैते तारयितुं भवन्ति कुशला, यस्य प्रसादं विना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥४॥

रेवा सिन्धु सरस्वती त्रिपथगा, सूर्यात्मजा कौशिकी,
गङ्गासागरसङ्गमाद्रितनया, लोहित्यशोणादयः ।
नालं प्रोक्तफलप्रदानविषये, यस्य प्रसादं विना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥५॥

लोकेशो हरिरम्बिका स्मरहरो, माता पिताऽभ्यागता,
आचार्यः कुलपूजिता यतिवरो, वृद्धस्तथा भिक्षुकः ।
नैते यस्य तुलां प्रयान्ति कलया, कारुण्यवारांनिधे-,
स्तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥६॥

सत्कीर्तिं विमला यशः सुकविता, पाण्डित्यमारोग्यता,
वाग्देव्यां पटुता कुले चतुरता, गाम्भीर्यमक्षोभिता ।
प्रागल्भे प्रभुता गुणे निपुणता, यस्य प्रसादाद्भवे-,
त्तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥७॥

ध्यानं दैवतपूजनं गुरुतपो, दानाग्निहोत्रत्रायः,
पाठो होमनिषेवणं पितृमखोऽथाप्यागताचांत्रलिः ।
येते व्यर्थफला ! भवन्ति नियतं, यस्य प्रसादं विना,
तं वन्दे शिवरूपिणं निजगुरुं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम् ॥८॥

पूर्वाशाभिमुखः कृताञ्जलिपुटः, श्लोकाष्टकं यः पठेत्,
पौरश्चर्यविधिं विनापि लभते, मन्त्रस्य सिद्धिं पराम् ।
नो विघ्नैः परिभूयते प्रतिदिनं, प्राप्नोति पूजाफलं,
देहान्ते परमं पदं निवसते, यद्योगिनां दुर्लभम् ॥९॥

इति श्रीशिवगुर्वष्टकं सम्पूर्णम् ।

श्रुतिः स्थाने स्थाने, स्मृतिसहचरी सा विवदते,
न मीमांसा मांसं, परिहरति तर्कों निरवधिः ।
न वेदान्तोऽभ्रान्तो, भ्रमयति हि सांख्यं प्रकृतिभि-,
र्दुरारोहो योगो, गमयति गुरुर्ब्रह्मपदवीम् ॥ १ ॥

स्वस्ति वः

ॐ

नमः शम्भवे

❀ शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् ❀

जयत्यनन्यसामान्य,प्रकृष्टगुणवैभवः ।
संसारनाटकारम्भ,निर्वाहणकविः शिवः ॥१॥

नमः शिवाय भूतभव्यभाविभावभाविने,
नमः शिवाय मातृमानमेयकल्पनाजुषे ।
नमः शिवाय भीमकान्तशान्तशक्तिशालिने,
नमः शिवाय शाश्वताय भास्वराय शम्भवे ॥२॥

नमः शिवाय निर्निकेतनिःस्वभावमूर्तये,
नमः शिवाय निर्विकल्पनिष्प्रपञ्चसंविदे ।
नमः शिवाय निर्विवादनिष्प्रमाणसिद्धये,
नमः शिवाय निर्मलाय निष्कलाय वेधसे ॥३॥

नमः शिवाय पार्थिवाय गन्धमात्रसंविदे,
नमः शिवाय षड्रसाय सामरस्यतृप्तये ।
नमः शिवाय तैजसाय रूपतानिरूपिणे,
नमः शिवाय पावनाय सर्वभावसंस्पृशे ॥४॥

नमः शिवाय नाभसाय सत्वमात्रराविणे,
नमः शिवाय निर्गलन्मलव्ययाय पायवे ।
नमः शिवाय विश्वसृष्टिसौष्ठवैकमीढुषे,
नमः शिवाय सर्वतः प्रसारिपादसम्पदे ॥५॥
नमः शिवाय विश्वभागभोगयोग्यपाणये,
नमः शिवाय वाचकप्रपञ्चवाच्यवाचिने ।
नमः शिवाय नास्यगन्धिसर्वगन्धबन्धवे,
नमः शिवाय रासनाय षड्रसोपसेविने ॥६॥
नमः शिवाय चाक्षुषाय विश्वरूपसंदृशे,
नमः शिवाय कृत्तिवृत्तिवस्तुमात्रसंस्पृशे ।
नमः शिवाय शब्दसंविदेकहेतुरूपिणे,
नमः शिवाय तद्गुणात्रयाविभागभूतये ॥७॥
नमः शिवाय पूरुषाय भोक्तृताभिमानिने,
नमः शिवाय सर्वतो नियन्त्रितानियामिने ।
नमः शिवाय कामभेदकल्पनोपकल्पिने,
नमः शिवाय किञ्चिदेव कर्तृताकलासृजे ॥८॥
नमः शिवाय किञ्चिदेव वर्त्मनोपपादिने,
नमः शिवाय भोग्यसर्ववर्धनोपरागिणे ।
नमः शिवाय शुद्धबुद्धतत्त्वमात्ररूपिणे,
नमः शिवाय दृक्क्रियाविकस्वरेश्वरात्मने ॥९॥

नमः शिवाय सर्ववित्प्रभो ! सदाशिवाय ते,
नमः शिवाय वाच्यवाचकार्थषट्कवित्तये ।
नमः शिवाय सर्वमन्त्रसत्पदोपपादिने,
नमः शिवाय पञ्चधा कलाप्रपञ्चपङ्चिने ॥१०॥
नमः शिवाय सौरजैनबौद्धशुद्धभोगिने,
नमः शिवाय भक्तिमात्रलभ्यदर्शनायते ।
नमः शिवाय सर्वतो गरीयसां गरीयसे,
नमः शिवाय सर्वतो महीयसां महीयसे ॥११॥
नमः शिवाय सर्वतः स्थवीयसां स्थवीयसे,
नमः शिवाय तुभ्यमस्त्वणीयसामणीयसे ।
नमः शिवाय मन्दराद्रिकन्धराधिशायिने,
नमः शिवाय जाह्नवीजलोज्ज्वलाभिजूटिने ॥१२॥
नमः शिवाय बालचन्द्रचन्द्रिकाकिरीटिने,
नमः शिवाय सोमसूर्यवह्निमात्रनेत्र ! ते ।
नमः शिवाय कालकूटकण्ठपीठसुश्रिये,
नमः शिवाय धर्मरूपपुङ्गवध्वजायते ॥१३॥
नमः शिवाय भस्मधूलिशूलिने त्रिशूलिने,
नमः शिवाय सर्वलोकपालिने कपालिने ।
नमः शिवाय दैत्यगर्वमर्दिने कपर्दिने,
नमः शिवाय नित्यनम्रनाकिने पिनाकिने ॥१४॥

नमः शिवाय नागराजहारिणे विहारिणे,
नमः शिवाय शैलजाविलासिने सुखासिने ।
नमः शिवाय मन्मथप्रमाथिने पुरप्लुषे,
नमः शिवाय कामदेहदाहयुक्तिकारिणे ॥१५॥
नमः शिवाय नागकृत्तिवाससेऽप्यवाससे,
नमः शिवाय भीषणश्मशानभूमिवासिने ।
नमः शिवाय पीठशक्तिपीठकोपभेदिने,
नमः शिवाय सिद्धमन्त्रयोगिने वियोगिने ॥१६॥
नमः शिवाय सर्वदक्षचतुर्नयाधिकारिणे,
नमः शिवाय सर्वतीर्थतीथताभिधायिने ।
नमः शिवाय साङ्गवेदतद्विचारचारवे,
नमः शिवाय षट्पदार्थषोडशार्थवादिने ॥१७॥
नमः शिवाय सांख्ययोगपञ्चरात्रपञ्चिने,
नमः शिवाय भक्तिमात्रसंस्तुताय शूलिने ।
नमः शिवाय भास्वते नमः शिवाय भर्ग ! ते,
नमः शिवाय सर्व ! ते नमः शिवाय गर्व ! ते ॥१८॥
नमः शिवाय खर्व ! ते नमः शिवाय पर्व ! ते,
नमः शिवाय रुद्र ! ते नमः शिवाय भीम ! ते ।
नमः शिवाय विष्णवे नमः शिवाय जिष्णवे,
नमः शिवाय धन्विने नमः शिवाय खड्गिने ॥१९॥

नमः शिवाय चर्मिणे नमः शिवाय वर्मिणे,
नमः शिवाय कर्मिणे नमः शिवाय धर्मिणे ।
नमः शिवाय भामिने नमः शिवाय कामिने,
नमः शिवाय योगिने नमः शिवाय भोगिने ॥२०॥

नयः शिवाय तिष्ठते नमः शिवाय गच्छते,
नमः शिवाय हेतवे नमः शिवाय सेतवे ।
नमः शिवाय सर्वथा नमः शिवाय सर्वदा,
नमः शिवाय सर्वते नमः शिवाय सर्वशः ॥२१॥

नमः शिवाय भव ! शर्व ! रुद्र ! हर ! शङ्कर ! भूतपते !,
गिरिश ! भर्ग ! शशिशेखर ! नीलगल ! ।
त्रिनयन ! वामदेव ! गिरिजाधव ! माररिपो !,
जय देवदेव ! भगवन् ! भवतेऽस्तु नमः ॥२२॥

एतामष्टो, त्तरशतनम, संस्कारस्कारपूतां,
भूतार्थव्या,हृतिनुतिमुमा,नाथगाथां प्रसन्नाम् ।
नन्दिप्रोक्तां, यमनियमतो, भक्तिभाजां नराणां,
सायं प्रात, र्भवति पठता,मीप्सितार्थस्य सिद्धिः ॥२३॥

इति श्रीव्यासाय नन्दिना प्रोक्तं

शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं

शुभम्

Q2
AVE
2007

DATE DUE

धर्मिणे।

ोगिने ॥२०॥

सेतवे।

र्वशः ॥२१॥

! भूतपते !,

नीलगल !।

!,

नमः ॥२२॥

सन्नाम्।

णां,

सिद्धिः॥२३॥

2007

शुभम्

२६ जुन १९६७

३२८२

AUTHOR अवेद्यनरहरि नाथो

TITLE गोरक्षस्तुतिमञ्जरी

DATE DUE	BORROWER'S NAME

३२८२

Q2
AVE
2007

MAHENDRA SANSKRIT UNIVERSITY 1986 AD

महेन्द्र संस्कृत विश्वविद्यालय

वाल्मीकि विद्यापीठ

पुस्तकालय

मुद्रक—परेशनाथ घोष, सरला प्रेस, बांसफाटक, बनारस
प्रकाशक—दीक्षित बुकडिपो, बांसफाटक, बनारस।